आरोग्य लेखाञ्जलि

श्यामसुन्दर रसायनशाला
गायघाट • वाराणसी

23476

श्यामसुन्दर आयुर्वेद-ग्रन्थमाला पुष्प : १२

आरोग्यसेवाञ्जलि

संशोधित-परिवर्द्धित संस्करण

लेखक

पं० केदारनाथ पाठक 'रासायनिक'

(भोजन विधि, आहार सूत्रावली, प्रयोग रत्नावली, ग्राम्य-चिकित्सा, टोटका विज्ञान, सिद्ध मृत्युञ्जय योग, अनुभूत योग द्वि० भा०, नीम और मधु के उपयोग आदि पुस्तकों के प्रणेता)

प्रकाशक

श्यामसुन्दर रसायनशाला प्रकाशन

गायघाट, वाराणसी--१

मुख्य वितरक

सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी

१५८

तृतीय संस्करण
नवम्बर १९७३

सर्वाधिकार
प्रकाशकाधीन

मूल्य
१-२५

विषय-सूची

१. मालिश और उसकी विधि ५
२. अपने हाथों कपड़ों को सफाई १२
३. आयुर्वेद में गंगा १९
४. ग्रीष्म ऋतु-चर्य्या २४
५. विटामिन 'सी' का प्रचुर स्रोत : आँवला ३२
६. अमरूद और उसके गुण ३६
७. परम उपयोगी फल : पपीता ४७
८. लुभावना फल : खरबूजा ५२
९. अमृत फल : बेल ६२
१०. परम पथ्य शाक : करेला ६८
११. सागों का राजा : आलू ७२
१२. बथुए की बिदाई ७४

घरेलू इलाज के लिए

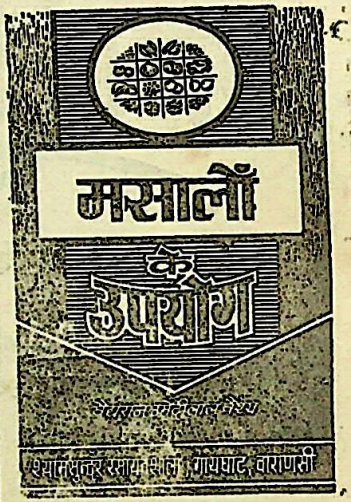

हल्दी, लहसुन, अजवाइन, सौंफ, अदरख, तेजपात, मेथी, हींग, जीरा, धनिया, राई, मगरैला, प्याज, नीबू, आंवला, और गूलर।

इन सोलह मसालों से अनेक प्रकार के रोग दूर करने की सरल चिकित्सा विस्तृत रूप से वर्णित है।

सजिल्द मूल्य : ५.५०

मुद्रक—विजय लक्ष्मी प्रेस, ए० ३/७७ ए०, त्रिलोचन, वाराणसी-१

2354

यह पुस्तक हमारे यहाँ मिलती है
एक्से
जैन हाउस, ८/१ एसप्लानेड इष्ट, कलकत्ता-१

अन्तर्दर्शन

गवेषणात्मक ढंग से, अधिकारी लेखकों द्वारा, मानव-स्वास्थ्य से सम्बन्ध रखने वाले विभिन्न विषयों के निबन्धों का संग्रह हिन्दी में अब भी नहीं के बराबर ही है। पत्र-पत्रिकाओं में आरोग्य विषयक जो निबन्ध समय-समय पर निकलते रहते हैं, वे सब-के-सब पाश्चात्य विचार-धाराओं की छाया मात्र ही होते हैं। उन निबन्धों में भारतीय आयुर्वेद-विज्ञान के सिद्धान्तों का किंचिन्मात्र भी समावेश नहीं हो पाता। वे निबन्ध अधिकतर एलोपैथिक स्वस्थवृत्त या प्राकृतिक चिकित्सा (नेचरोपैथी) के मूल सिद्धान्त को ही प्रतिपादित करते हैं। उनके सभी सिद्धान्त अमान्य और आयुर्वेद के सभी सिद्धान्त मान्य हैं,—मेरा यह अभिप्राय नहीं। विशेषतः स्वास्थ्य-विज्ञान के सिद्धान्त जगत् के विभिन्न हिस्सों में भिन्न प्रकार के हैं। इसी कारण, सम्पूर्ण सिद्धान्त समन्वयात्मक नहीं हो सकते। सभी देशों के स्वास्थ्य-विषयक सिद्धान्त वस्तुतः वहाँ की प्रकृति, जल-वायु और उस देश, काल को दृष्टि में रखकर बनाये जाते हैं। इस प्रकार के सिद्धान्त भला सभी देशों में कैसे लागू हो सकते हैं? जहाँ शीत कटिबन्ध के प्राणी को तुषार और कुहरों से भरे मुखमण्डल से उषा उद्‌बोधन कराती है, वहाँ उष्ण कटिबन्ध के वासी हम भारतीयों का, स्वर्ण-रश्मियों के आगमन की सूचना देने वाली नभोमण्डल की लालिमा के द्वारा सुप्रभात होता है। ऐसी दशा में दोनों के उपर्युक्त सिद्धान्त मूलतः एक नहीं, किन्तु दो होंगे। हाँ, कुछ विशेष सिद्धान्तों का उनसे भले ही समन्वय हो जाय यह दूसरी बात है।

महारथियों के श्रेणी में गिने जाने वाले बहुत-से आयुर्वेद-मनीषी ऐसे भी हैं, जो अधिकार के साथ आयुर्वेद-सिद्धान्त, भारतीय

संस्कृति और जल-वायु की दृष्टि से उक्त विषयक निबन्ध लिख सकते हैं; किन्तु ऐसे लोग इस प्रकार के लेखनकार्य से विमुख ही रहते हैं। यदि आयुर्वेदिक इने-गिने पत्रों की माँग पर ये लिखते भी हैं तो, उन पत्रों का क्षेत्र संकुचित होने के कारण, इनके निबन्ध कुछ ही पाठकों की दृष्टि तक पहुँच पाते हैं और हिन्दी के दैनिक-साप्ताहिक पत्रों के कालम तो इनके निबन्धों से रिक्त-से ही रहते हैं! जब तक इन बड़भैयों की लेखनी मौन है, तब तक इस छुटभैये की रचना से ही पाठक संतोष करें। उपर्युक्त भावनाओं से प्रेरित होकर ही प्रस्तुत संग्रह के प्रकाशन का उपक्रम किया गया है। इस संग्रह के प्रायः सभी निबन्ध समय-समय पर सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं।

मेरा मत विज्ञान के समन्वय के पक्ष में है। प्रस्तुत संग्रह के निबन्धों में पाश्चात्य सिद्धान्तानुसार प्रतिपादित, अत्यन्त उपयोगी और अतिशय महत्त्वपूर्ण ऐसे विषय, जो आयुर्वेद-विज्ञान-सम्मत या भारतीय प्रकृति के अनुकूल हैं, मैंने घुल-मिल जाने दिया है। 'विटामिन' तथा 'लोह' आदि रासायनिक घटक ग्राह्य एवं शुष्क रज के द्वारा मालिश की अत्यन्त उपयोगिता का प्रतिपादन, तेल को मर्दन-क्रिया का एक गौण सहायक मात्र मानना, कच्ची भाजी का आहार, अन्न से अधिक भाजी का आहार, बहुत ज्यादा धूप में रहने की सिफारिश आदि इतर विज्ञान के सिद्धान्त त्याज्यांशों में से हैं।

आरोग्य-शास्त्र से सम्बन्ध रखने वाले इन लेखों की अञ्जलि प्रेमी पाठकों के सम्मुख उपस्थित की जाती है। आशा है, उन्हें यह रुचिकर प्रतीत होगी।

विनीत—

केदारनाथ पाठक

आरोग्य लेखमाला

मालिश और उसकी विधि

शरीर में नित्य तेल की मालिश करना स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यन्त लाभदायक है। जिस भाँति विविध प्रकार के भक्ष्य और पेय पदार्थों के द्वारा शरीर के भीतर पोषकतत्त्व पहुँचाये जाते हैं, उसी भाँति मालिश के द्वारा भी शरीर के कई अवयवों को पोषक-तत्त्व प्राप्त होते हैं। हमारे शरीर के असंख्य रोमकूप उक्त तत्त्वों को ग्रहण करने में समर्थ होते हैं। रोमकूपों के द्वारा तेल प्रविष्ट होकर सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त उष्णता को शान्त करता है। यदि बहुत दिनों तक तेल की मालिश न करवायी जाय तो शरीर में रहने वाला 'भ्राजक' नामक पित्त अपना काम उचित रीति से नहीं कर पाता और वह विकृत शरीर में रुक्षता, दाह, रक्तविकार, कुरूपता तथा जड़ता उत्पन्न करता है। मालिश ही उसका आहार है। नियमपूर्वक मालिश कराने वाले का 'भ्राजक' पित्त प्रकृत दशा में रहकर अपना काम पूरा करता रहता है। शरीर को चमकीला, मुलायम तथा लचीला बनाना इसी का काम है।

सम्पूर्ण शरीर में नित्य तेल की मालिश कराने से शरीर हल्का बना रहता है, बल बढ़ता है और शारीरिक धातुओं की पुष्टि होती है। मालिश केवल 'भ्राजक' पित्त के लिए ही नहीं शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है और उन पर इसका अलग-अलग प्रभाव पड़ता है।

भिन्न-भिन्न अंगों पर प्रभाव—सिर में नियमपूर्वक तेल लगाने से मस्तक की शिराओं में उचित रीति से रक्तसंचालन होता है और इसका प्रभाव सम्पूर्ण शरीर पर भी पड़ता है, क्योंकि मस्तक ही शरीर का मूल है। एवं शरीर-यन्त्र को नियमित रूप से चलाने के लिए हृदय की तरह यह भी एक केन्द्रस्थल है। मस्तिष्क की थकावट, दर्द तथा तत्सम्बन्धी रोगों को शान्त करना तेल की मालिश से ही सम्भव हो सकता है। सिर में तेल की मालिश से बुद्धि और नेत्र-ज्योति की वृद्धि तथा नाक, कान एवं नेत्र आदि ऊपर की इन्द्रियों की तृप्ति होती है। इससे मस्तक और कपाल का भी बल बढ़ता है, बालों की जड़ें मजबूत होती हैं और वे लम्बे, काले तथा चिकने हो जाते हैं।

कानों में रोज-रोज तेल डालने से उनके भीतर की झिल्लियाँ तर रहतीं, ठुड्डी और गर्दन मजबूत बनी रहती तथा दर्द, बधिरता आदि रोग नहीं होते। जो लोग कानों में कभी तेल नहीं डालते, उनके कान का मैल बड़ी कठिनाई से निकल पाता है और उसे निकलवाते समय उन्हें विशेष कष्ट भी होता है। शास्त्र की आज्ञा भी है कि शिर, श्रवणेन्द्रिय और पैरों के तलवों में विशेष रूप से तेल का व्यवहार करना चाहिए।

नाक में तेल की नस्य (नास) लेने से छीकें आती हैं, दिमाग हल्का और तर रहता है, आंखें परिपुष्ट होती हैं तथा नाक की रूक्षता एवं जुकाम नहीं होता।

पैरों और उसके तलवों में बराबर तेल की मालिश कराने से पैरों का फटना, उनकी नसों का संकुचित होना दूर होता है, आँखों की ज्योति बढ़ती है तथा अच्छी तरह नींद आती है।

तेलों का चुनाव—मालिश के लिए कौन-सा और किस प्रकार का तेल लेना चाहिए—इसका भी विचार आवश्यक है; क्योंकि द्रव्यगुणश्च की दृष्टि से, जैसा तेल होगा, अंगों पर उसका प्रभाव भी वैसा ही होगा। विशेषतः तिल और सरसों के तेल ही लगाने के काम में व्यवहार किये जाते हैं। हाँ, बादाम और कद्दू का तेल भी लगाने के काम में आता है; लेकिन इनका उपयोग साधारणतः सिर में ही किया जाता है। खास मौकों पर नाना विध प्रभावशाली जड़ी-बूटियों के योग से बने हुए कई प्रकार के तेल भी प्रयोग में लाये जाते हैं। वनस्पतिगर्भित तेलों का शरीर पर बहुत शीघ्र ही चमत्कारक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। आयुर्वेद-शास्त्र में इस प्रकार के तेलों की संख्या सौ से ऊपर है।

पीली सरसों का तेल उत्तम होता है। यह गरम तथा कफ और वायुनाशक है। पुराने जुकाम या बादी के कारण दिमाग के चक्कर खानेपर इसका व्यवहार बहुत ही हितकर होता है। सरसों की तरह तिल के भी कई भेद हैं। उन में काला तिल ही उत्तम समझा जाता है। काले तिल का तेल विशेषतः पित्तविकार को नष्ट करने वाला, बलदायक, केशों के लिए हितकर, स्पर्श में शीतल, त्वचा को उत्तम बनाने वाला और किंचित् गरम है। यह सभी प्रकार के तेलों में उत्तम समझा जाता है। शायद इसीलिए वैद्यक-शास्त्र में वर्णित प्रायः अधिकांश तेल तिल के तेल द्वारा ही बनाये जाते हैं। तिल स्वयम् ही जीवनीशक्ति से पूर्ण द्रव्य है।

बादाम का तेल समशीतोष्ण (समान तर-गरम) है, अर्थात् न बहुत ठंढा है और न बहुत गरम। यह मस्तिष्क की दुर्बलता, चक्कर सिर-दर्द आदि का नाशक है। फासफोरस नामक तत्त्व बादाम में

श्चपदार्थों के गुण-दोष की विवेचना करने वाला शास्त्र।

बहुत है; इसलिए यह दिमाग के हक में विशेष लाभदायक है। इसका उपयोग, दिन-रात लेखन-सम्पादन आदि कार्य करने वाले बुद्धिजीवियों के लिए विशेष हितकर है। कद्दू के तेल का भी यही प्रभाव है; लेकिन यह विशेष ठंढा है। मस्तिष्क की उष्णता और आँखों की जलन के लिए यह अत्यन्त लाभदायक है।

महुआ, कुसुम आदि और मूँगफली के तेल का भी व्यवहार होता है; लेकिन सरसों और तिल के तेल के अभाव में ही। ये तीनों तेल गरम हैं। महुए का तेल अत्यन्त वायुनाशक, कुसुम का तेल किंचित् वायुवर्द्धक और दस्तावर (खाने से) एवं मूँगफली का तेल किंचित् वायुवर्द्धक और अत्यन्त पित्तल है। वनस्पति-गर्भित तेलों का चुनाव प्रायः रोगों के अनुसार ही किया जाता है।

ऋतुओं का ध्यान—यों तो गरमी में तिल और जाड़े में सरसों के तेल का व्यवहार करना उचित ही है; किन्तु 'मरते दमतक सिर ठंढा और नाभी तथा पैर गरम रखो'—इस आदेश के अनुसार सिर में ठंढे तेल का ही व्यवहार करना ठीक है।

शीतल होने के कारण सिर के लिए तिल का तेल ही सर्वोत्तम है और विशेष अवसरों पर बादाम या कद्दू के तेल का व्यवहार उचित है। यदि जाड़े का मौसम हो और प्रकृति गरम न हो तो सरसों के तेल का भी सिर में प्रयोग किया जा सकता है, या जिन्हें सदा से ही सरसों का तेल लगाने का अभ्यास हो, उन्हें प्रकृति-सात्म्य होने के कारण गरमी के दिनों में भी सरसों के तेल के व्यवहार से किसी प्रकार का शारीरिक व्यतिक्रम नहीं मालूम होता। देहातों में ऐसे बहुत-से लोग मिलेंगे जो बारहों मास सरसों के तेल का ही व्यवहार करते हैं। इसे भी उनकी प्रकृति के अनुकूल हुआ समझना चाहिए।

सर्वदा मालिश की आदत डालना तो लाभदायक है ही; किन्तु जाड़े के दिनों में नियमपूर्वक तेल की मालिश कराना अत्यन्त आवश्यक है। इस ऋतु में आबोहवा में प्राकृतिक शीलता होने के कारण रोमकूपों के द्वारा पसीना नहीं निकल पाता तथा विशेष शीत के कारण शरीर के ऊपर की त्वचा भी रूखी बनी रहती है। इन्हीं कारणों से शारीरिक कोमलता और लचीलापन कुछ नष्ट हो जाता है। ऐसे अवसरों के लिए तेल की मालिश सर्वोत्तम उपाय है। तेल की मालिश शरीर में कोमलता और लचीलापन लाने के अतिरिक्त पसीना भी लाने वाली है।

जाड़े के दिनों में, जिस प्रकार अन्य ऋतुओं की अपेक्षा अधिक परिमाण में गरिष्ट और पौष्टिक आहार की आवश्यकता हुआ करती है, उसी प्रकार अधिक तेल की मालिश कराना भी आवश्यक है। जाड़े में तेल की मालिश कराने से भीतर हड्डियाँ पुष्ट होती हैं और ठोकर, ठेस या चोट सहने की शक्ति प्राप्त होती है। इस मौसम में उष्ण, पौष्टिक और त्वचा की रूक्षता नाश करने वाली औषधियों के योग से बने तेल की मालिश अत्यन्त लाभदायक होती है। अश्वगन्धा तेल, गुडूची तेल तथा नारायण तेल का उपयोग करना उत्तम है। गरमी और बरसात में शतावरी तेल की मालिश कराना गुणदायक है। इसके अतिरिक्त शीतगुण सम्पन्न पुष्पों से वासित अनेक प्रकार के तेल भी उष्णकाल में, सिर के अतिरिक्त सम्पूर्ण शरीर में मालिश के निमित्त उपयोग में लाये जा सकते हैं। अधिक कीमती होने के कारण ही सुवासित तेलों की मालिश की प्रथा नहीं है।

मालिश का समय——मालिश का सबसे उत्तम समय प्रातःकाल है। सबेरे स्नान से पहले मालिश कराने से रात में सोये

रहने के कारण, स्वभावतः उत्पन्न होनेवाली शारीरिक जड़ता नष्ट हो जाती है और फिर स्नान कर लेने से शरीर में लगा हुआ तेल भी धुल जाता है, जिससे वस्त्र भी मलिन नहीं हो पाते। इस समय की मालिश से शरीर दिन भर फूल की तरह हल्का मालुम पड़ता है। मालिश से धमनी, शिराएँ एवं रोमकूप सभी तृप्त होते हैं। जिन्हें कफ की शिकायत हो, उनके लिए तो प्रातःकाल में ही मालिश कराना एवं कानों में तेल की बूँदें छोड़ना हितकर है। कफ-शान्ति के इच्छुकों को उष्ण-प्रभावयुक्त तेलों का व्यवहार करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, जिन्हें दाह हो, उन्हें दोपहर को और जिन्हें वायु की वृद्धि होती हो, उनके लिए सायंकाल मालिश तथा कानों में तेल उपयोगी है। दाह में शीतल गुण वाला चन्दनादि तथा हिमसागर आदि एवं वायु में ऊपर कहे हुए नारायण आदि उष्ण तेल ही अनुकूल होंगे।

मालिश की विधि—जिस अंग में मालिश करनी हो, वहाँ अच्छी तरह तेल लगाकर किंचित् दवाव के साथ मालिश शुरू करनी चाहिए। स्थानभेद से मालिश के समय हाथों के दवाव में भी भिन्नता होनी चाहिए। विशेषतः तलहथियों के द्वारा रोओं की अनुकूल दिशा में ही मालिश करनी चाहिए। विपरीत दिशा में हथेलियों की रगड़ लगने से रोएँ उखड़ जाते हैं, वहाँ की चमड़ी लाल हो जाती है तथा कभी-कभी रोओं की जड़ें सूज जाती हैं। मालिश करने वाला यदि अपने सम्पूर्ण शरीर का भार तलहथियों के द्वारा मालिश कराने वाले के अंग पर डाले तो, समझना चाहिए कि वह व्यक्ति इस कला से शून्य है अथवा परिश्रम से जी चुराने वाला है। मालिश में केवल तलहथियों की स्वाभाविक शक्ति लगनी चाहिए। अंगों को उँगलियों से खूब कसकर रगड़ना मालिश की अनुचित एवं कष्टप्रद क्रिया है।

मालिश कराते-कराते जब अंग हल्का मालूम पड़े तथा मालिश करने वाले की तलहथियाँ अप्रिय लगने लगें, तब उस अंग की मालिश को पूर्ण समझें। मालिश के समय तेल की मात्रा विशेष हो जाने से तलहथियों में स्वाभाविक बल नहीं आ पाता और वे अंगों पर सरकने लगती हैं। तेल की मात्रा कम होने पर हथेलियों की रगड़ से अंग में वेदना होने लगती तथा तेल का पूरा असर त्वचा पर न होने के कारण, मालिश से होने वाले लाभ से भी वंचित रहना पड़ता है, इसलिए तेल के अतियोग और हीनयोग—दोनों ही से बचना आवश्यक है। प्राकृतिक चिकित्सा-शास्त्र में तो मालिश चिकित्सा और उपचार, दोनों में ही अपना प्रमुख स्थान रखती है। मांस पेशियों की मालिश नसों की मालिश और त्वचा की मालिश इत्यादि अनेक प्रकार की मालिश की विधियाँ प्रचलित हैं। 'मर्दन चिकित्सा' इस शास्त्र का एक स्वतंत्र अध्याय है।

प्राकृतिक चिकित्सा-विधि से उपचार में मर्दन क्रिया उपचारक के अतिरिक्त प्रधान चिकित्सक को भी करनी पड़ती है। इस क्रिया को साधारण समझकर वहाँ इसकी महत्ता कम नहीं है।

अन्त में यह जान लेना आवश्यक है कि जिन्हें नया ज्वर हुआ हो, अजीर्ण हो, जुलाब के लिए जिन्होंने कोई दस्तावर औषधि खायी हो, जिन्हें वमन हुआ हो तथा वस्ति (एनीमा) आदि क्रिया के द्वारा जिनके शरीर से मल निकाला गया हो,—उन्हें इन दशाओं में तेल की मालिश कराना एकदम मना है। यदि उपर्युक्त अवस्था वाले तेल की मालिश करावेंगे, तो उनके रोग कष्टसाध्य या असाध्य हो जायँगे। विरेचन की औषधि लेने के पश्चात् अभ्यंग करने से जठराग्नि मंद पड़ जाती है। नवीन ज्वर में अभ्यङ्ग से ज्वर कष्ट साध्य हो जाता है। ऐसी अवस्था में बहुत संभव है कि उन्हें तरह-तरह के रोग आ घेरें और प्राण संकट में पड़ जायँ।

अपने हाथों कपड़ों की सफाई

स्वास्थ्य की दृष्टि से कपड़ों की सफाई का भी विशेष महत्व है। अंगों की सफाई के बाद यदि कपड़ों की सफाई पर ध्यान न दिया जाय तो अंगों की सफाई व्यर्थ ही है; क्योंकि साफ किये हुए अंगों पर फिर गन्दे कपड़े धारण कर लेने से वे ऊपरी त्वचा को शीघ्र ही मलिन कर देते हैं और स्वास्थ्य के ऊपर भी उसका बुरा असर पहुँचता है। गन्दे कपड़े सामाजिकता और सभ्यता के भी विरुद्ध है।

पाश्चात्य देशों में तो यह काम गृहविज्ञान के अन्तर्गत समझा जाता है। वहाँ पुरुषों की अपेक्षा विशेषतः स्त्रियों को, गार्हस्थ-शास्त्र के अन्य विषयों के साथ-साथ इसकी भी शिक्षा दी जाती है। वहाँ बहुत-सी ऐसी स्वतन्त्र शिक्षण संस्थाएँ भी हैं जहाँ से हर साल बहुतेरे स्त्री-पुरुष इस विषय के पूर्ण विशेषज्ञ होकर निकलते हैं।

हम लोग अपने गन्दे कपड़े प्रायः धोबियों से ही धुलवाते हैं; लेकिन जहाँ तक बन पड़े, उन्हें यदि अपने ही हाथों से साफ किया करें तो और भी अच्छा हो। "अपनी गन्दगी अपने ही हाथों साफ करो"—महात्मा गांधी का यह सिद्धान्त केवल मनुष्यता की दृष्टि से ही नहीं, आर्थिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। सचमुच हमें अपनी गन्दगी दूसरों से साफ कराने का क्या हक है ? लेकिन, परम्परा से ऐसी परिपाटी चली आ रही है। शीघ्र ही केवल इसी सिद्धान्त पर चलने लगना सभी गृहस्थों के लिए आसान नहीं। फिर भी, मनुष्यता और व्यक्तिगत अर्थ-विज्ञान की दृष्टि से प्रयत्न ऐसा ही होना चाहिए कि गन्दे किये हुए अपने कपड़े स्वयं साफ किये जायँ।

धोबियों से कपड़े धुलवाने से वे बहुत जल्दी फट जाते हैं; क्योंकि वे ज्यादातर पत्थर के ऊपर बड़ी बेरहमी के साथ उनको पटक-पटककर जल्दीसे-जल्दी साफ कर किनारे कर देते हैं। यदि कपड़े अपने ही हाथों साफ किये जायँ तो अपने कपड़े की ममता होने के कारण हम उन्हें धीरे-धीरे और कायदे के साथ साफ करेंगे और उन्हें फटने से बचावेंगे। इसके अतिरिक्त, यदि कपड़े धोने की कला मालूम रहो, तो खर्च को बचत के साथ-साथ समय की बचत की जा सकती है। कपड़ों की सफाई करना शरीर से सम्बन्ध रखने वाली ऐसी दैनिक समस्या है, जिसका सभी को बराबर सामना करना पड़ता है। कपड़े धोने की कला न जानने के कारण ही बहुत से लोग, बहुत ज्यादा साबुन और परिश्रम खर्च करने पर भी उसकी अच्छी सफाई नहीं कर पाते और ऊब कर धोवियों से ही धुलवाना उचित समझते हैं। हमारे कहने का यह मतलब नहीं कि धोबियों से कपड़े धुलवाये ही न जायँ। जिन्हें आर्थिक सुविधा हो और समय की पाबन्दी न हो, वे धोबियों से कपड़े धुलवावें; लेकिन हमारे देश में ऐसे ही लोगों का समुदाय ज्यादा है, जिन्हें अधिक कारणों से अपने कपड़ों की सफाई से बंचित रहना पड़ता है। देहातों में तो बहुत-से ऐसे लोग भी मिलेंगे, जो साल में एक बार भी कपड़े नहीं धुलवाते। यदि ऐसे लोगों को सुगम और सस्ते उपाय मालूम हो जायँ एवं साथ-साथ स्वास्थ्य की दृष्टि से कपड़ों की सफाई की आवश्यकता एवं महत्ता मालूम करा दी जाय, तो कोई कारण नहीं कि वे अपने कपड़ों की सफाई न करें। देहातों की बात जाने दीजिए, शहरों में भी बहुत-से ऐसे लोग बसते हैं, जिन्हें धोबियों का खर्च बर्दाश्त करना मुश्किल हो जाता है। इसी कारण वे गन्दगी में रहने के आदी हो जाते हैं। यह भी सच है कि कपड़े की कमी की वजह से ज्यादातर लोग लाचार होकर मलिनता से लिपटे रहते हैं। स्वास्थ्य और सामाजिक

रहन-सहन की दृष्टि से ऐसी आदत डालना वांछनीय नहीं कहा जा सकता।

जिस प्रकार भोजन के लिए अन्न-जल का संग्रह करना आवश्यक है, उसी प्रकार अपने हाथों से कपड़ों की सफाई करने वालों के लिए भी कपड़े साफ करने के उपादानों—मसालों—को हर समय अपने घर में मौजूद रखना जरूरी है। यदि मसाले घर में मौजूद रहेंगे तो वक्त पर जल्द और बिना दिक्कत उठाये ही कपड़े साफ हो जायँगे।

साफ करने के मसाले—१—केले के पत्तों, शीशम की पत्तियों या आम की लकड़ियों एवं पत्तों की राख, २—रेह मिट्टी, ३—पीली मिट्टी, ४—रीठे का वक्कल, ५—मसूर की दाल, ६—धोने वाला सोड़ा या कपड़ा धोने का साबुन—ये सब कपड़े साफ करने के मसाले हैं। इनमें बहुत-से ऐसे मसाले भी हैं जिन्हें देहात के वाशिन्दे बिना खर्च आसानी से प्राप्त कर सकते हैं।

केले के पत्तों की राख—केले के पेड़ों में पत्ते और उसकी छाल सूखकर लटकती रहती है। उन्हें जलाकर राख बना लें।

शीशम की पत्तियों की राख—पेड़ के नीचे से शीशम की सूखी पत्तियाँ बटोरकर जला लें और उसकी राख रख छोड़ें।

आम की लकड़ियों की राख—यदि चूल्हे में केवल आम को ही लकड़ियाँ जलायी गयी हों तो उनकी राख रख छोड़ें या उनके पत्ते, पेड़ों के नीचे से बटोरकर जला लें और रख लें।

रेह मिट्टी—ज्यादातर नदी के किनारे की जमीन में, जहाँ छोटे-छोटे गड्ढों या ढाबों में बहुत दिनों तक बरसाती पानी इकट्ठा रहता है, वहाँ पर ऊसर जमीन में रेह मिट्टी बहुत रहती है।

वहीं से उसे लेकर रख लें या बाजार से खरीद लें। बाजार की रेह मिट्टी जरा विशेष ढंग से साफ की हुई रहती है।

पीली मिट्टी—नदी, तालाब या कुएँ से अक्सर पीली मिट्टी निकला करती है, उसे लेकर रख लें।

रीठे का बक्कल—देहात के नजदीक जंगलों या बागों में रीठे के पेड़ हों तो जमीन पर गिरे हुए रीठे को इकट्ठा कर लें और उसके बक्कल उतारकर रख लें या बाजार से खरीद लें।

मसूर की दाल—यह लोगों के घर में अक्सर रहती ही है।

कपड़ा धोने का सोडा—कपडे साफ करने का सोडा बाजार से खरीदते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि सोडा बहुत दिनों का पुराना न हो। पुराना सोडा कपड़े साफ करने में समर्थ नहीं होता। सोडे में दुकानदार कच्चे चूने का मेल कर देते हैं, जिससे उसकी शक्ति नष्ट हो जाती है। अच्छा सोडा बहुत ज्यादा साफ और हल्का होता है। पानी में घुले हुए सोडे के लगने से यदि हाथ की उँगलियों में सिकुड़न पड़ने लगे तो समझना चाहिए कि सोडा उत्तम है। असली सोडे को पानी में डालने से पानी कुछ ठंढा-सा हो जाता है।

कपड़ा धोने का साबुन—बाजार से कपड़े धोने का साबुन खरीदते समय उसकी अच्छाई और बुराई पर भी ध्यान देना आवश्यक है। आजकल व्यापार की होड़ में साबुन भी बनावटी बिकने लगा है। साबुन बनाने वाले ज्यादातर सस्तेपन और अधिक लाभ करने के ख्याल से उस में मैदा, पत्थर की बुकनी (सोपस्टोन) तथा खड़िया मिट्टी इत्यादि की मिलावट कर देते हैं। ऐसे साबुन के व्यवहार से पैसे भी ज्यादा खर्च होते हैं और कपड़े भी अच्छी

तरह साफ नहीं होते। कपड़े साफ करने का बढ़िया, बिना मिलावट का साबुन देखने में चमकदार और वजन में हल्का होने के कारण तौल में ज्यादा चढ़ने वाला होता है।

कपड़ा धोने की विधि

१—एक बरतन में केले के पत्तों की राख दसगुने पानी में घोलें और दूसरे बरतन में कपड़ा बाँधकर उस में डाल दें। बारह घंटे के बाद, जब पानी चूकर नीचे के बरतन में इकट्ठा हो जाय और राख की केवल गाद शेष रह जाय, तब गाद को फेंक दें। उसी पानी में धोने के कपड़े डालकर आग पर उबालें। उबल जानेपर साफ कर लें। कपड़े उबालते वक्त वे जल न जायँ,—इसका भी ध्यान रखना आवश्यक है। थोड़ी-थोड़ी देर पर उन्हें उलटते-पलटते रहना चाहिए। जिस पानी में कपड़े उबाले गये हों, पहले उसी पानी के साथ पटक-पटककर अच्छी तरह उन्हें साफ करना चाहिए। इसी तरह शीशम या आम की पत्तियों एवं लकड़ियों की राख के नितरे हुए पानी से भी कपड़ों की सफाई कर लेनी चाहिए।

२—रेह मिट्टी के नितरे हुए पानी के साथ उबालकर फींचने से भी कपड़े अच्छी तरह साफ होते हैं; लेकिन ज्यादातर लोग पानी नितारने का कष्ट नहीं उठाते और रेह मिट्टी के साथ ही कपड़े उबालकर साफ कर लेते हैं। इस विधि से कपड़े अच्छी तरह नहीं धुलते।

३—पीली मिट्टी को पानी में घोलकर और उसके अन्दर के कंकड़-पत्थर को चुनकर हटाने के बाद उसमें कपड़े उबालकर साफ करने चाहिए। पीली मिट्टी के साथ घंटे-आध-घंटे भिगों कर बिना उबाले ही जो कपड़े साफ किये जाते हैं, वे अच्छी तरह साफ नहीं होते। पीली मिट्टी में साफ करने से कपड़े पर हल्का

पीला रंग चढ़ जाता है और वे कोकटी (पीले खद्दर) के रंग के मालूम पड़ते हैं।

४—रीठे के बक्कलों को कूटकर आठगुने पानी में घंटे-दो घंटे भिगो दें। फिर उसी में कपड़े डालकर १२ घंटे पड़ा रहने दें। कपड़ों को पत्थर पर पटकने के पहले रीठे के बक्कल-मिले पानी के साथ अच्छी तरह कड़े हाथों से उनको मसलें। रीठे के बक्कलों से ज्यादातर लोग ऊनी या रेशमी कपड़े ही साफ करते हैं, लेकिन सूती कपड़े भी इनसे भलीभाँति साफ हो जाते हैं।

५—रीठे के बक्कलों के तरह ही मसूर की दाल को भी भिगो-कर उससे कपड़े साफ किये जाते हैं। यदि उसकी भूसी भी दाल के साथ ही रहे तो कपड़े की और भी अच्छी सफाई होती है। मसूर की दाल में सूती, रेशमी तथा ऊनी कपड़े भी साफ किये जाते हैं।

६— पानी में कपड़े धोने के सोडे को डालकर पकाना चाहिए पानी खौलने लगे, तब उसमें कपड़े अच्छी तरह उबालने चाहिए। यदि सोडा उबालते समय उसमें सोडे से आठवाँ हिस्सा कली चूना डाल दिया जाय, तो कपड़े खूब और जल्दी साफ होते हैं। इसके अतिरिक्त, बहुत-से लोग थोड़ा साबुन का चूरा भी डाल देते हैं। इससे कपड़े तो जल्दी और ज्यादा साफ होते ही हैं, मेहनत भी कम लगती है।

बिना उबाले भी कच्चे पानी में ही सोडे से कपड़े साफ किये जाते हैं। इस रीति से मेहनत कुछ विशेष लगती है और कपड़ों में सफेदी भी कम आती है।

७—साबुन से कपड़े साफ करने के भी दो तरीके हैं—पहला उबालकर और दूसरा कच्चा। पानी में साबुन की कतरनें डालकर उबालें। पानी और साबुन उबलकर जब दुधिया रंग का हो

जाय, उसमें कपड़े डालकर पकावें। जब कपड़े का मैल घुलकर पानी में आ जाय, चूल्हे से उतार लें थोड़ा गरम रहे, तभी साफ करना शुरू कर दें। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, पहले उबले हुए पानी में ही कपड़ों को अच्छी तरह साफ करें, फिर ठंढे पानी से साफ करें। उबालकर या कच्चे पानी से जिस तरह भी साफ करना हो, इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि जहाँ तक हो सके, पानी नदी या तालाब का ही हो। कुएँ के पानी में साबुन घोलने से वह अच्छी तरह घुलता नहीं, फटकर पानी से अलग हो जाता है। खारा होने के कारण समुद्र के जल में भी यही दुर्गुण है।

ठंढे पानी से साबुन घिसकर यदि कपड़े साफ करने हों तो पहले कपड़े को पानी में भिगोकर लम्बाई में समेट लें और सिमटे हुए कपड़े पर जब एक ओर साबुन लग चुके, तब दूसरी तरफ लगाना शुरू करें। पहले एक तरफ जब साबुन लगावें, उसी समय उसे गोलियाते भी जायँ। साबुन घिसते समय हाथ हल्का रखना चाहिए। कड़े हाथों से बहुत ज्यादा साबुन घिसा देने से ही कपड़े जल्दी नहीं साफ होते, केवल साबुन ही अधिक नष्ट होता है। दोनों ओर साबुन लगा लेने के बाद समेटे हुए कपड़े को बिखेर लें और पत्थर या काठ पर पटककर साफ करें। यदि छोटे कपड़े हों तो उन्हें समेटने और गोलियाने के बजाय तह लगाकर या चौड़ाई में फैलाकर दोनों ओर हल्के हाथों से साबुन घिसकर साफ करें। कच्ची विधि से साफ करते समय कपड़े में दो बार साबुन देना चाहिए। एक बार साबुन देने से मैल तो निकल जाता है, परन्तु सूक्ष्म कण रह जाते हैं। दूसरी बार साबुन दे देने से मैल के सूक्ष्म कण तो नष्ट हो ही जाते हैं, कपड़ों में विशेष उज्ज्वलता भी आ जाती है।

आयुर्वेद में गंगा

ऋषियों ने गंगा को 'सुधा' कहा है। सुधा के गुण गंगाजल में हैं या नहीं, इसका निर्णय सुधा प्राप्त किये बिना नहीं हो सकता, लेकिन सुधा का निर्वचन शाब्दिक विवेचन करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि सुधा उसी परमोपयोगी वस्तु की संज्ञा है जिसे मनुष्य सुख से ग्रहण करे।

प्राकृतिक चिकित्सा के आचार्यों का सिद्धांत है कि—जिस वस्तु को रसना सुगमता से ग्रहण कर सके,उसे ही शरीर के लिए ग्राह्य समझना चाहिए। यदि लवण का आस्वादन करने से जिह्वा इनकार करे, अम्लरस के सम्पर्क से जिह्वा के अगल-बगल में रहने वाली लाला ग्रन्थियाँ आवश्यकता से अधिक 'लाला' निकालना शुरू करें तथा कटु रस के व्यवहार से हिचकियाँ प्रारम्भ हो जायँ, तो समझें कि हमारी प्रकृति इन सब तीक्ष्ण वस्तुओं को स्वीकार करना नही चाहती। जिह्वा को कष्ट पहुँचाए बिना मुख द्वारा उदर में पदार्थ उतर जाय और वह शरीर और मन के भी अनुकूल हो, वही शरीर के लिए प्राकृतिक हिताहार है।

गंगा का जल भी प्राणियों की प्रकृति, मन और आत्मा के सर्वथा अनुकूल है,। इसकी सुधा संज्ञा सार्थक है। सुधा की तरह यह भी मानव शरीर के लिए पथ्य और प्रकृति के अनुकूल है। राजनिघंटुकार ने गंगाजल के विषय में लिखा है कि—गंगाजल शीतल, स्वच्छ, स्वादु, अतिरोचक, पथ्य, पाचक, पवित्र, तृष्णा और मोह-नाशक, जठराग्नि को तीव्र करने वाला तथा बुद्धिवर्द्धक है।

हमारे धार्मिक ग्रंथों में प्रातःकाल गङ्गास्नान का इसलिए माहात्म्य है कि मनुष्य सम्पूर्ण रात्रि मोह की जननी निद्रा की गोद

में पड़ा रहने तथा सुख-दुखमय स्वप्नों को देखने के पश्चात् अपनी चित्त-वृत्ति को वशीभूत नहीं रख पाता। यों किसी भी जल में मनुष्य स्नान कर सकता है। स्नान का काम निद्रा, श्रम का नाश करना है। सुश्रुत के चिकित्सा स्थान में लिखा है कि–स्नान निद्रा, दाह, श्रम, स्वेद, कंडू, तृषा को नाश करने वाला, हृदय के लिए हितकर, मल नाश करने में श्रेष्ठ, समस्त इंद्रियों का शोधन करने वाला, तन्द्रा और पाप को नष्ट करने वाला, चित्त को प्रसन्न रखने वाला, पुरुषार्थ बढ़ाने वाला, रक्त शुद्ध करने वाला तथा अग्निदीपक है।

मनुष्य शरीर के लिए भोजन आवश्यक है और भोजन के गुण भी बहुत हैं, पर यदि भोजन में अन्न-जल न खाकर घी, दूध आदि पौष्टिक पदार्थ खाये जायँ तो भोजन और भी अधिक गुणकारी होगा। इसी तरह स्नान के अनेक गुण होने पर भी यदि साधारण नदी-तालाब में न नहाकर मलमोहनाशिनि, तथा जठराग्नि को दीप्त करने वाली गंगा में अवगाहन किया जाय तो सोने में सुगन्ध वाली कहावत चरितार्थ होगी।

स्नान करने से शरीर के रोमकूपों में चिपका हुआ मैल साफ हो जाता है और उन्हीं रोमकूपों द्वारा शुद्ध वायु शरीर में प्रवेश कर विषाक्त वायु बाहर निकलती है। स्नान करते समय रोमकूपों के द्वारा ही शीतलता शरीर में प्रवेश कर जठराग्नि को उत्तेजित करती है। रक्त की चाल मन्द हो जाने से निद्रा आने लगती है। स्नान करने से मांस-पेशियाँ तथा रक्त उत्तेजित होता है। रक्त तथा पेशियों की उत्तेजना से निद्रा, तन्द्रा तथा मोह आदि का नाश हो जाता है और शरीर में नई स्फूर्ति, उत्साह उत्पन्न हो जाता है।

गंगाजल में स्नान करने का इसीलिए अधिक महत्त्व है। यदि गंगास्नान न भी करें, केवल उसे पीने के ही काम में लायें तो भी

स्नान के गुण शरीर में आ जायँगे। जब शरीर में आहार की पाचन-क्रिया प्रारम्भ होती है, पाचक पित्त के द्वारा आँतों में अन्न का रसभाग रंजक पित्त की सहायता से रक्त में बदल जाता है और छोटी-छोटी तथा महीन नसों में होकर शरीर में परिभ्रमण करता है। तब रक्त में घनत्त्व आरम्भ हो जाता है। रक्त के घनरूप में होने से शरीर में खुश्की पैदा होती है। फलरूप प्यास का अनुभव होने लगता है। पानी पीने से रक्त घनरूप में नहीं बदलने पाता। शरीर को अधिक जल मिलने के कारण, रक्त की दौड़ तेजी से शुरू हो जाती है। जल पीने से रक्त का घनत्व नष्ट हो जाता है, वह अपनी मर्यादा के अन्दर आ जाता है और सूक्ष्म नसों में सुगमता से परिभ्रमण प्रारम्भ कर देता है। पीने के बाद शरीर में परिभ्रमण करनेवाले रक्त के साथ मिलकर जल सारे शरीर में चक्कर काट आता है। इस भाँति जल, रक्त के साथ शीघ्र ही शरीर के प्रत्येक प्रान्त में पहुँचकर रक्त-परिभ्रमण में सहायक बन जाता है। रक्तसंचार से ही प्राणियों का जीवन है और रक्त की चाल नियमित रखने के लिए जल की बड़ी आवश्यकता है। इस काम के लिए विशुद्ध जल का होना अनिवार्य है। गंगाजल स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभदायक है। स्वच्छ, रोचक तथा स्वादु होने से रसना इसे सहज ग्रहण कर लेती है। शीतल तथा तृष्णा और मोह का नाशक होने के कारण यह शरीर के रक्त की चाल को अधिक उत्तेजित करने में समर्थ होता है।

भारत दार्शनिक देश है। यहाँ सदा से बुद्धिवर्द्धक वस्तुओं का आदर होता रहा है। हमारे ऋषि-महर्षि तत्त्वज्ञान में लीन, विचारक और विद्वान् थे। उन्होंने गंगाजल के गुणों का अनुभव भी किया। गंगाजल प्रज्ञाकर होने से बुद्धिजीवियों का उपकारक है। यह प्रज्ञाकर होने से मस्तिष्क की सुषुम्ना नाड़ियों को ब्राह्मी तथा

शंखपुष्पी का बल देने वाला है। ब्राह्मी और शंखपुष्पी में जितने सोमगुण हैं, गंगाजल को नित्य व्यवहार में लाने से उतने ही सोमगुण शरीर में एकत्र होता है। मैंने देखा है कि उन्माद के दो रोगी जब तक कोठरियों में बन्द रहे तब तक हो-हल्ला मचाते रहे। एकाएक वे दोनों कोठरी से भाग निकले। मानसिक और शारीरिक उष्णता से घबराकर दोनों गंगा में कूद पड़े। एक चार मील पर और दूसरा ग्यारह मील पर जल से बाहर निकला। देखा गया कि दोनों का पागलपन छूमन्तर हो गया है। सभी आश्चर्य में थे। आह्निक सूत्रावलि में लिखा है—

मासद्वयं श्रावणादि सर्वा नद्यो रजस्वलाः।
तासु स्नानादिकंवर्ज्यं वर्जयित्वा सुरापगाम् ॥

श्रावण–भादों दो महीनों तक वर्षाऋतु में नदियाँ रजस्वला रहतीं हैं। उसमें स्नानादि कर्म मना है; किन्तु गंगा को छोड़कर। वर्षाऋतु में नदियों का जल विषाक्त होने के कारण व्यवहार में लाने का निषेध है। यद्यपि 'वर्जयित्वासुरापगाम्' ऐसा लिखा है, तथापि अन्य ऋतुओं की अपेक्षा वर्षाऋतु में गंगाजल भी कुछ गुरु, वायुवर्द्धक तथा मंदाग्नि करने वाला होता है इसलिए यदि वर्षा में गंगा का जल व्यवहृत किया जाय तो उसे स्वच्छ कर लेना उचित है। अशुद्ध जल व्यवहार में लाने से रक्तदोष, चित्तविभ्रम तथा मंदाग्नि आदि व्याधियाँ होती हैं। पर गंगाजल में इतने अधिक गुण हैं कि वर्षाऋतु के कारण दूषित हो जाने पर भी, चित्तविभ्रम का रोगी उसमें अवगाहनमात्र से रोगमुक्त हो जाता हैं।

हिमालय की दिव्य औषधियों, मणियों तथा धातुओं के मिश्रण से लम्बी धारा में बहने के कारण गंगाजल विषनाशक, पुष्टिकर तथा आरोग्यकर है। भारतीय नदियों की खास विशेषताएँ हैं।

प्रयाग के संगम पर आप देखेंगे कि गंगा और यमुना दोनों बहनें आपस में मिली हुई हैं, पर दोनों की धाराएँ दो दिशाओं में विभक्त हैं। उस स्थान का जल परस्पर दूध-पानी की तरह मिलकर एक नहीं हो पाया है; अपितु सर्वथा भिन्न है। गंगाजल स्वच्छ है तो यमुना-जल गंभीर श्यामवर्ण। इसी तरह गंगोत्तरी की रासायनिक तथा वैज्ञानिक विशेषता है। गंगोत्तरी के जल को लेकर उसमें किन्हीं धातुओं को अग्नि में तप्त करके छोड़ें, धातुएँ जल में बुझकर ठंढी पड़ जायँगी, पर जल नहीं सूखेगा। उनकी तौल बराबर उतनी-की-उतनी बनी रहेगी। गरम धातु को ठंढे जल में छोड़ने से अवश्य जल सूखेगा, यह मामूली बात है, पर गंगोत्तरी के लिए यह नियम लागू नहीं होता। यह आश्चर्य की बात है। अनेक तीर्थ-यात्री इसकी परीक्षा करते हैं।

पारिवारिक चिकित्सा के लिए श्रेष्ठ पुस्तकें

१. नीम के उपयोग	१·२५
२. मधु के उपयोग	१·२५
३. मट्ठा या छाछ के उपयोग	१·२५
४. आम के उपयोग	१·५०
५. तुलसी के उपयोग	०·७५

श्यामसुन्दर रसायनशाला प्रकाशन
गायघाट, वाराणसी।

ग्रीष्म ऋत-चर्य्या

ग्रीष्मऋतु के लक्षण—इस ऋतु में सूर्य की प्रखर किरणों से दिग्दिगंत सन्तप्त रहता है। प्रचण्ड आतपज्वाला से पृथ्वी तपती रहती है। नैऋत कोण की कष्टदायी उष्ण वायु चलती है। नदियों में अल्प जल रह जाता है। चक्रवाकयुगल भ्रमण करते फिरते हैं। बेचारा तृषित मृग मारा-मारा फिरता है। वनस्पतियाँ, लता-गुल्म तथा वृक्षों के पत्ते सूर्य-किरणों की प्रखरता से सूखने लगते हैं। मनुष्यों से लेकर पशु-पक्षी तक संसार के सभी प्राणी उष्णता से व्याकुल होकर शीतल वस्तुओं की इच्छा करते हैं।

गुण-दोष—ग्रीष्म ऋतु रुक्ष, वस्तुओं में तीक्ष्णता भरने वाली पित्त उत्पन्न करने वाली और कफ-नाशक है।

दोषसंचय, कोप और शमन—ग्रीष्म ऋतु में वायु संचित होती, वर्षाऋतु में कुपित होती और शरद्ऋतु में उसका शमन होता है।

पथ्य-सिद्धान्त—ग्रीष्मऋतु में सूर्य अपनी तीव्रता से जगत् के सार अर्थात् जल-तत्त्व का शोषण करता है इसलिए इस ऋतु में विशेष जल-तत्व वाले तरल शीतल द्रव्य तथा स्निग्ध अन्नपान का सेवन करना स्वास्थ्य के लिए हितकर है।

किस रस का सेवन करें ?—इस ऋतु में जल तत्त्व का शोषण, वायु का संचय और पित्त कुपित होता है; इसलिए वायु और पित्त-शामक पदार्थों का सेवन करना उचित है। इस कार्य के लिए मधुर रस सर्वोत्तम है; क्योंकि मधुर रस की उत्पत्ति पृथ्वी और जल से होने के कारण, यह स्वभावतः वायु और पित्त-शामक,

शीतल एवं स्निग्ध होता है। मधुर रस में इक्षु-शर्करा उत्तम होती है। इसे जल के साथ जब तक द्रव-रूप में न कर लिया जायगा, तब तक इस ऋतु में यह विशेष गुणप्रद नहीं हो सकती। इस दृष्टि से, वैद्यक का, शर्करोदक तथा विविध प्रकार के मधुर पेयों का विधान-सम्मत है।

दिनचर्या

तेल का व्यवहार—प्रातःकाल स्नान से पहले सिर में तिल का या गुलाब, जूही और चम्पा आदि सुगन्धित एवं शीतवीर्य पुष्पों से वासित तेलों का व्यवहार करना उत्तम है। जिन्हें सम्पूर्ण शरीर में नित्य तैल-मर्दन का अभ्यास हो, वे उपर्युक्त तेलों का अथवा नानाविध औषधियों के योग से निर्मित महाचंदनादि तैलों का भी उपयोग कर सकते हैं।

स्नान—यों तो प्रातःकाल का स्नान साधारणतः सभी ऋतुओं में उपयोगी है, किन्तु ग्रीष्मऋतु में यह अत्यन्त लाभदायक है। सूर्य्योदय से पहले या उसके कुछ ही देर बाद, जब तक सूर्य की किरणें ठंढी रहें, स्नान कर लेना चाहिए। पृथ्वी पर सूर्य-किरणों की उष्णता व्याप्त हो जाने के साथ-साथ नदी का जल भी तप्त होने लगता है। उस समय स्नान करने से उसका पूर्ण लाभ शरीर प्राप्त नहीं कर सकता। अन्य ऋतुओं की अपेक्षा इस ऋतु में कुछ विशेष काल तक स्नान करना चाहिए। जल में बारम्बार गोते लगाकर स्नान करने पर जब शारीरिक उष्णता शान्त हो जाय, श्रम दूर होता मालूम हो और एक-दो बार शरीर में रोमांच का अनुभव होने लगे तो शीघ्र ही स्नान समाप्त कर देना चाहिए। आवश्यकता से अधिक स्नान भी हानिकर है।

प्रातःकाल का आहार—प्रातःकाल का समय काम करने का है, आहार करने का नहीं। पाश्चात्य देशों में ऐसी कई सभाएँ स्थापित हुई हैं जो प्रातःकाल के भोजन को व्यर्थ सिद्ध करती हैं। आयुर्वेद-विज्ञान भी यही कहता है कि —"कफ का समय व्यतीत हो जाने के पश्चात् आहार ग्रहण करो।" फिर भी, जिन्हें सदा से प्रातःकाल कुछ-न-कुछ आहार करने का अभ्यास हो, वे यदि इस ऋतु में धारोष्ण दूध, उबालकर ठंढा किया हुआ दूध, ठंढाई तथा ताजे और सरस ऋतु फलों का व्यवहार कर सकते है।

दिन का आहार—कफ का समय व्यतीत हो जाने और पित्त का समय उपस्थित होने पर, अर्थात् साढ़े दस वा ग्यारह बजे के करीब दिन का पूर्ण आहार करना चाहिए। इस ऋतु में ताजा; परन्तु पकाकर ठंढा किया हुआ आहार करना उचित है। ग्रीष्म-ऋतु में गर्मागर्म आहार हानिकर होता है। इस समय विशेष सोमात्मक और तरल पदार्थों का व्यवहार करना लाभदायक है।

मध्यान्हकाल कैसे व्यतीत करें ? ग्रीष्मऋतु में दोपहर को मकान के नीचे के हिस्सें में, जहाँ तरी हो, वास करना चाहिए। खिड़कियों और दर्वाजों में खस की टट्टियाँ लगाकर उन पर शीतल जल का छिड़काव किया गया हो,—ऐसे मकानों में, बेंत की बनी चिकनी चटाई, केले के मुलायम पत्ते, कमल के पत्ते या फूलों को बिछाकर शयन करना अत्यन्त सुखकर है। जलाशय के निकट के मकान में, नदियों में नाव पर, शतावर आदि शीतवीर्य लताओं के निकुंजों और फौवारों के निकट वास करना भी इस काल में स्वास्थ्य के लिए हितकर है। शरीर में स्निग्धता उत्पन्न करने के हेतु दोपहर को थोड़ी नींद लेना भी लाभदायक है।

रात्रिचर्या

सायंकाल के कृत्य—सायंकाल शीतल, ताजे फलों के रस, स्निग्धता उत्पादक मगज और मधुर द्रव्यों के योग से बने पेय पदार्थों का सेवन, जल में तैरना, मित्रों के साथ जल-विहार तथा नौका-विहार करना एवं नदी-किनारे थोड़ा भ्रमण करना हितकर है।

रात्रि का आहार—रात्रि को आठ-साढ़े-आठ बजे के करीब लघु,सुपाच्य, मृदु तथा किंचित् तरल पदार्थों का सेवन और शीतल जल का पान करना चाहिए। तरल पदार्थों में दही और द्विदल जाति के द्रव्यों से बने पदार्थों की अपेक्षा दूध तथा शीतवीर्य रसीली भाजियों का व्यवहार करना विशेष हितकर है।

शयन—मकान की खुली छत पर या खुले मैदान में, जहाँ चन्द्रमा की शीतल किरणें और शीत आ रही हो, हल्के बिस्तर पर शयन करना चाहिए।

वस्त्र—उष्ण कटिबन्ध के वासी हम भारतीयों को ग्रीष्मऋतु में वस्त्र की उतनी आवश्यकता नहीं पड़ती, जितनी अन्य देश के वासियों को पड़ा करती है। इस ऋतु में थोड़े से वस्त्रों से ही काम चल जाता है। जहाँ तक हो सके, महीन सफेद तथा जोगिया रंग के वस्त्रों का व्यवहार करना चाहिए। सफेद वस्त्र न उष्ण और न शीतल अर्थात् मातदिल होता है जोगिया रंग का वस्त्र पवित्र, शीतल एवं पित्त-नाशक होता है। इस ऋतु में महीन, कौशेय (रेशमी) वस्त्र के व्यवहार से लू लगने का भय नहीं रहता। यह कई प्रकार के कीटाणुओं को भी नाश करनें में समर्थ होता है।

शारीरिक सुख के अन्य उपकरण—ग्रीष्मऋतु में जूते पहनकर मार्ग में चलना उचित है; क्योंकि नंगे पैर चलने से तप्त

पृथ्वी के कारण पैर के तलवे बारम्बार गरम होते रहेंगे और उसका हानिकर प्रभाव शीघ्र ही नेत्र और मस्तिष्क पर पड़ेगा।

छाता—संपूर्ण शरीर को, विशेषतः गर्दन के उपर के भाग को, धूप से बचाने के लिए इस ऋतु में छाते का व्यवहार करना आवश्यक है। धूप में छाता न लगाने से मुख की त्वचा की कोमलता ही नष्ट नहीं होती, अपितु वह झुलस जाती है और मस्तिष्क तथा नेत्रों में जलन भी हो जाती है। कभी-कभी तो ऐसी दशा में लोगों को नकसिर फूटते तथा उन्मत्त भी होते देखा गया है।

पंखा—इस ऋतु में ताड़ और खस के पंखे का व्यवहार करना उपयोगी है। पंखे को शीतल जल से तर करके काम में लाना चाहिए। ताड़ के पंखे की वायु त्रिदोष शमन करने वाली और खस के पंखे की वायु शीतल तथा पित्तशामक होती है।

पुष्पों की माला—विविध पुष्पों की माला धारण करने से शारीरिक राग की ही पूर्ति नहीं होती, किन्तु उसका स्वास्थ्य पर भी विशेष प्रभाव पड़ता है। बेलपत्र, तुलसी तथा सहदेवी आदि वनस्पतियों में जिस भाँति एक दिव्य शक्ति–तेजस्–(एलेक्ट्रोसिटी) विद्यमान रहता है और शरीर पर धारण करने से उनका शीघ्र ही प्रभाव दीख पड़ता है, उसी भांति कई प्रकार के पुष्प भी तेजस् गुण सम्पन्न होने के कारण शरीर पर शीघ्र ही अपना विशेष प्रभाव दिखाते हैं। जहाँ उनकी सुगन्ध से कई प्रकार के रोग नष्ट होते हैं और मन भी प्रसन्न होता है, वहाँ उनकी तेजस् शक्ति का भी आश्चर्यजनक फल होता है। कई योगियों ने रुग्ण शरीर पर केवल पुष्प धारण कराकर रोग-निवारण किया है और लोगों को आश्चर्य में डाल दिया है। गुलाब, जूही, चम्पा, कमल आदि शीत गुण सम्पन्न, रक्त-दोष-निवारक, पित्त-नाशक, दाहशामक तथा

तृप्तिदायक कई ऐसे पुष्प हैं, जिनका इस ऋतु में व्यवहार कर लाभ उठाया जा सकता है। पुष्पों के अतिरिक्त इस ऋतु में कपूर और मोतियों की माला धारण करना भी श्रेष्ठ है।

अनुलेप—भ्रम, स्वेद और शारीरिक दुर्गन्ध को नष्ट करने के निमित्त ऋतुओं के अनुकूल अनुलेपन भी करना चाहिए। कपूर, सफेद चन्दन और सुगन्धवाला आदि द्रव्यों के योग से बने शीतल अनुलेप का ग्रीष्मऋतु में प्रयोग करना अत्यन्त हितकर है।

हितकारी आहार-द्रव्य

अन्न—जौ, गेहूँ, चावल, मूँग, मटर, मसूर तथा अरहर आदि एक साल के पुराने अन्न का व्यवहार करना हितकर है। नवीन अन्न में पृथ्वी की उष्णता भरी रहती है; अतः सर्वसाधारण उन्हें पचाने में असमर्थ होते हैं। लगातार नवीन अन्न खाते रहने से ग्रीष्मऋतु में वायु और पित्त विकृत होने लगता है, भयानक अतिसार प्रारम्भ हो जाता है और ग्रहणी धीरे-धीरे दोषयुक्त हो जाती है।

कृतान्न—खीर, जल और चीनी के साथ जौ का सत्तू, दूध, भात और चीनी, पेठे के रस से तैयार की हुई कुम्हरौड़ी आदि हितकर हैं।

शाक—शाकों में कद्दू, कच्ची ककड़ी, परवल, कच्चा केला, पेठा, कोमल कच्चा तरबूज, कच्चा कटहल का व्यवहार हितकर है।

फल—फलों में पका आम, पका कटहल, पका केला, कसेरू, शहतूत, खिरनी, पपीता, संतरा, पनकोरा नारियल आदि हितकर हैं। बेल और खरबूजा विशेष रूप से सेवनीय हैं।

पेय—दूध-मिसरी, ठंढाई, नीबू की सिकंजी और उसका पना, सिखरन, सौंफ, गुलाब, कमल, खस, चन्दन, पाटल-पुष्प आदि का

शर्बत या अर्क तथा नदी का शीतल जल लाभदायक है।

मसाले—कालीमिर्च, जीरा, सौंफ, इलायची, धनिया, हरा धनिया, हरा पोदीना, हल्दी, सेंधानमक आदि अत्तम हैं।

अन्य पदार्थ—गाय के दूध का मक्खन, भैंस के दूध का मक्खन, घी, ओले, मिसरी, खाँड़, बताशे, बेल और आँवले का मुरब्बा, पेठापाक, गुलकंद, आलूबुखारा, काला मुनक्का आदि उपयोगी हैं।

अपथ्य पदार्थ—इस ऋतु में नवीन अन्न, उड़द, काँगनी, बैंगन, पका तरबूज, चौलाई, तेल के बने पदार्थ, खिचड़ी, खट्टा दही, लहसुन, राई, सरसों, हींग अजवाइन आदि हानिकर हैं। खट्टे, चरपरे, खारे, नमकीन, कड़वे, सूखे, हानिकारक तथा उष्ण पदार्थों को इस ऋतु में त्याग देना चाहिए।

अपथ्य कर्म—अधिक परिश्रम, व्यायाम, मार्ग चलना, गर्म स्थानों का वास, धूप में घूमना, आग के निकट रहना, ये सब स्वास्थ्य के लिए हानिकर हैं।

मदिरा सेवन—ग्रीष्मऋतु में मदिरा का सेवन करना मना है, क्योंकि इस ऋतु में एक तो यों ही शरीर के जलांश का सूर्य-किरणों की प्रखरता के कारण शोषण होता रहता है, तिसपर यदि ऊपर से मदिरा का सेवन कर लिया जाय, तो शरीर के जलांश को वह और भी सुखाने लगेगी। मदिरा उदर में पहुँचते ही अँतड़ियों से जल का शोषण करने लगती है। अँतड़ियों की आर्द्रता नष्ट होने पर रुधिर से जल का शोषण करती है। रुधिर में जल की कमी होने पर वह रक्तवाहिनी शिराओं से जलांश की कमी की पूर्ति करती है और शिराएँ अपने जल-तत्त्व की कमी गुर्दे से पूर्ण करती हैं। इस भाँति, मदिरा पीने वालों के शरीर के आवश्यक

तत्त्वों का क्रमशः ह्रास होता है। अन्य ऋतुओं की अपेक्षा इस ऋतु में इसका हानिकर प्रभाव शरीर पर बिशेष पड़ता है। इस ऋतु में मदिरा पीने से शोक, दाह, मोह, शिथिलता आदि रोग उत्पन्न होते हैं; इसलिए ग्रीष्मऋतु में भूलकर भी मदिरा के निकट नहीं जाना चाहिए। सभी ऋतुओं में एक-रस पीने वाले मदिरा-साधकों को भी बहुत थोड़ी मात्रा में और उसमें भी विशेष मात्रा में जल मिलाकर पीना चाहिए।

स्त्री-प्रसंग—ग्रीष्मऋतु में स्त्री-प्रसंग करना मना है। इस ऋतु में स्त्री-प्रसंग के कारण होने वाली शारीरिक क्षति की पूर्ति शीघ्र नहीं हो पाती; क्योंकि शुक्रप्रणाली उसी दशा में अपना काम सुचारुरूप से करती रहती है, जब कि प्रकृति और वातावरण में विशेष शीतलता हो। इस ऋतु में सूर्य के उत्तरायण होने से जगत् का विशेष शोषण होता है और शीतलता नष्ट हो जाती है, शरीर में शुक्र की उत्पत्ति बहुत कम होती है। ऐसी दशा में स्त्री-प्रसङ्ग करने से पित्त एवं वायु-जनित रोगों के होने की सम्भावना बनी रहती है। इस ऋतु में मधुर, स्निग्ध, पित्त-नाशक एवं शीतल द्रव्यों का पर्याप्त सेवन करते रहते हैं और शीतल स्थान में निवास करते हैं, यदि वे महीने-बीस दिनों में एक बार स्त्री-प्रसंग करें तो विशेष हानि नहीं।

ग्रीष्म के रोग—विशूचिका, अतिसार, रक्तपित्त, अंशुघात, भ्रम, दाह, पिपासा, शिरःशूल, मूर्च्छा, वमन और मूत्रकृच्छ आदि रोग विशेषतः ग्रीष्मऋतु में होते हैं। आंत्रिक ज्वर तो इस ऋतु में होता ही है। गणनाथसेन ने अपने 'सिद्धान्त निदान' ग्रन्थ में इसका संकेत किया है।

●

विटामिन 'सी' का प्रचुर स्रोत : आँवला

विभिन्न आहार-द्रव्यों में पाया जाने वाला, जीवन के लिए अत्यावश्यक विटामिन 'सी' एक महत्वपूर्ण अलक्षित पदार्थ है। आहार में इसका अभाव होने पर, रक्त-विकृति, दन्त-विद्रधि (मसूड़ों में सूजन, वेदना और पीब निकलना), अस्थि-दौर्बल्य, दन्त-दौर्बल्य, पाचन-यन्त्र की विकृति, रक्तभारातिवृद्धि (हाई ब्लड-प्रेसर), पक्षाघात, ग्रन्थिवात तथा गर्भावस्था में वमन आदि रोग होते हैं।

आहार-विद्या के आधुनिक गवेषकों ने, आँवले में सर्वाधिक विटामिन 'सी' प्राप्त किया है। यह जल में गलनशील है; इस कारण इसके नष्ट होने का अधिक भय रहता है। हरे, सरस शाक, कन्द तथा फलों में यह विद्यमान रहता है और ये शाकादि स्थायी नहीं होते, शीघ्र ही विकृत् हो जाते हैं। उनके विकृत होते ही विटामिन 'सी' नष्ट हो जाता है। अधिकतर कच्चे रूप में खाये जाने वाले शाकों और कन्दों को भी हम उबालकर आहार-रूप में प्रयोग करते हैं इस कारण, उसमें व्याप्त विटामिन 'सी' नष्ट हो जाता है। यह अग्नि की किञ्चित् भी उष्णता सहन करने में समर्थ नहीं होता। इसकी प्राप्ति के लिए शाकादिकों को कच्चे रूप में ही खाने का यत्न करना आवश्यक है। सुखाने से या क्षार-प्रधान द्रव्यों के मिश्रण से भी विटामिन 'सी' नष्ट होता है।

अभी तक वैज्ञानिकों को सभी विटामिनों की भाँति, विटामिन 'सी' को डिब्बों में बन्द करने में सफलता प्राप्त नहीं हुई थी;

लेकिन आँवले ने इसे भी सुगम कर दिया है। आँवले के रासायनिक विश्लेषण से यह सिद्ध हो चुका है कि सूखने पर भी इसमें विटामिन 'सी' पूर्ण रूप से विद्यमान रहता है। इस विशेषता के कारण, सूखे आँवले के चूर्ण की गोलियाँ आज दिन लड़ाकू फौजों की जेबों में भी स्थान पाने लगी हैं। आँवले के अतिरिक्त, अल्प-से-अल्प व्यय में अधिक काल तक स्थायी विटामिन 'सी' प्राप्त कराने वाला दूसरा पदार्थ अभी तक प्रकाश में नहीं आया है।

आँवले का रासायनिक पृथक्करण करने पर इसमें अत्यधिक लोह, श्वेतसार, क्षार एवं अत्यल्प मात्रा में द्राक्ष-शर्करा (ग्लूकोज) पायी गयी है। आयुर्वेदिक योगों में तो प्रायः सभी स्थानों पर आँवले की ही व्यापकता है। अत्यन्त पथ्य और आरोग्यकर होने के कारण ही इसे इतना उँचा स्थान प्राप्त है। कायाकल्प कराने वाले द्रव्यों में यह मुख्य है। जिस प्रसिद्ध 'च्यवनप्राश' रसायन को खाकर वृद्ध च्यवन ऋषि ने पुनर्यौवन प्राप्त किया था, उसमें मुख्य द्रव्य आँवला ही है।

आयुर्वेदिक निघण्टुओं में, इसके गुणपरक अच्छे-अच्छे नाम दिये गये हैं, जिनसे इसकी महत्ता प्रकट होती है। यथा—अमृता, वयस्था (उमर को स्थिर करने वाली), कायस्था (शरीर को स्थिर करने वाली), श्री फली (कान्तिकर फल), धात्रिका (पालन-करने वाली), शिवा (कल्याणी), शान्ता (शान्ति देने वाली), वृष्या (वीर्यवर्द्धक) आदि। आयुर्वेदिक द्रव्यगुण की दृष्टि से यह रक्तपित्त और प्रमेह-नाशक, स्वास्थ्यकर, रसायन (असमय के बुढ़ापे और रोगों का नाशक), दाह, पित्त, वमन, क्षय एवं त्रिदोष नाशक, केश्य (बालों के लिए हितकर), भग्नसंधान कारक (टूटे-अंगों का जोड़ने वाला) तथा वात-पित्त-नाशक है।

आज हम खाद्य-रूप में इसका उपयोग करना भूलते जा रहे

हैं। यदि मुरब्बे आदि के रूप में इसका व्यवहार करते भी हैं, तो अत्यल्प मात्रा में। और मुरब्बा बनाते समय अग्नि पर ताप देने तथा उबालकर उसका जल फेंक देने से उसका अधिकांश गुण तो नष्ट ही हो जाता है। उबले हुए आँवले के जल में लोह और क्षार प्रत्यक्ष ही पृथक् निकला हुआ दृष्टिगोचर होता है। विटामिन की दृष्टि से तो उबले हुए आँवले का कुछ भी महत्व नहीं है, प्राकृतिक चिकित्सकों का यह मत है।

आर्थिक दृष्टि से विचार करने पर भी आँवला अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है। दस से चालीस तोले पका केला, दस से बीस तोले अमरूद, पाँच से बीस तोले टमाटर का रस, पाँच से दस तोला सन्तरे का रस तथा अढाई से पाँच तोले अंकुरित मूँग से जितना विटामिन 'सी' हमें प्राप्त होता होगा, उतना छः आने भर आँवले के रस से ही प्राप्त हो जाता है। आँवला सस्ती चीज है। एक सेर आँवले गिनती में पचास के लगभग होते हैं। छः या आठ आने भर रस के लिए चार-पाँच आँवलों की आवश्यकता पड़ती है। हमारे शारीरिक पोषण के लिए चौबीस घंटों में जितने विटामिन 'सी' की आवश्यकता होती है, उतना हमें पाँच-छः आँवलों से प्राप्त हो जाता है।

यदि हम अपनी दैनिक आहार-सूची में आँवलों को सम्मिलित कर लें तो उसके चमत्कृत करने वाले विभिन्न रासायनिक गुणों के स्वास्थ्यकर प्रभाव से लाभान्वित हो सकते हैं। कषाय और तिक्त रसयुक्त, द्राक्षशर्करा की मात्रा अत्यल्प, कठोर एवं रेशेदार होने के कारण, इसे अन्य स्वादु फलों की भाँति दाँतों से काटकर हम नहीं खा सकते; इसलिए सुगमता पूर्वक ग्रहण करने के लिए इसका छना हुआ रस लेना चाहिए और स्वादु बनाने के लिए उसमें रस से आधी या समान मात्रा में मधु का मिश्रण करना चाहिए। मधु

मिलाने से वह स्वादु तो हो ही जाता है, द्राक्षशर्करा की न्यूनता भी पूर्ण हो जाती है।

चटनी के रूप में भी कच्चे आँवलों का व्यवहार होता है। आँवलों को कुचलकर उसकी गुठली निकाल दें और थोड़ी किश-मिश, अदरक, हरा धनिया या पोदीना, कालीमिर्च भुना जीरा, खाँड़ तथा नमक डालकर उपयोग में लावें। विशेष स्वादु बनाने के लिए उसमें भुना हुआ थोड़ा तिल भी मिलाया जा सकता है। शरद्, शीत और वसन्त आदि ऋतुओं में कच्चे आँवले मिलते हैं; अतः छः महीनों तक विटामिन 'सी' की प्राप्ति के लिए कच्चे आँवले का ही उपयोग करना चाहिए। जब कच्चे आँवले न मिलें, तब सूखे का व्यवहार करें। उन्हें कुचलकर गुठली निकाल डालें और उनके छोटे-छोटे टुकड़ों को जल में भिगोकर मधु के साथ रस या चटनी के रूप में सेवन करें।

आँवले धूप में बहुत दिनों पर कठिनाई से सूखते हैं तथा बहुत सड़ते हैं; इसलिए उन्हें एक बार जल में उबालकर सुखाना चाहिये। आयुर्वेदिक औषधि के योगों में भी ये गुणहीन आँवले ही व्यवहार में लाये जाते हैं। चरक ग्रन्थ का प्रसिद्ध 'आमलकी रसा-यन' भी आँवले के अभाव में सेवन किया जा सकता है।

आँवले के चूर्ण में ताजे आँवले के रस की इक्कीस भावना दी जाती है। उसमें घृत, मधु, पिप्पली तथा शर्करा का योग देकर पात्र को वर्षा के आरम्भ में राख की ढेर में ढँककर वर्षा के अन्त में निकालकर सेवन कराया जाता है। यह आमलकी रसायन मनुष्य के शरीर को व्याधिरहित कर देता है। यह बुद्धि, मेधा, स्मृति, रूप, बल, प्रताप, वचन-चातुर्य एवं शरीरस्थ सत्व गुण की वृद्धि करता है। एक से दो तोले तक इसकी मात्रा है।

विशेष जानकारी के लिए आँवला के उपयोग मूल्य ३५ पैसे मगाऐं।

अमरूद और उसके गुण

नाम—संस्कृत भाषा में अमरूद के विशेषतः गुण, स्वरूप, स्पर्श और रसपरक नाम मिलते हैं। यथा—दृढ़बीज (कड़े बीज-वाला), बहुबीज (अधिक बीज वाला), मांसल (अधिक गूदे-वाला), अपृथक्त्वचः (जिसका छिलका अलग न हो सके), मृदुल (कोमल), पीत (पीले रंग का), वर्तुल (गोल), तुबर (कसैले स्वाद वाला), मधुराम्ल (मीठा-खट्टा) आदि।

प्रदेशीय नाम—हिन्दी में यह अमरूद के नाम से विख्यात है। मैथिली में लताम, बंगला में पियरा, मराठी में पेरू, गुजराती में जामफल, तेलुगु में झामिपंडु, द्रविड़ में कोइया और कर्नाटकी में इसे शीवे कहते हैं। अंग्रेजी में इसे ग्वावा-वैट, ग्वावारेड, लैटिन में सिडियम् पोमिफरम् पाइरसको सुनीस, फारस वाले अमरूत और अरब वाले कमशरी कहते है।

अमरूद की खेती—अमरूद क्षार-प्रधान या ऊसर जमीन में इसका विकास रुक जाता है। यदि पेड़ बड़ा हुआ भी तो उसमें फल छोटे-छोटे लगते हैं और गूदे के स्थान पर बीज ही अधिक हो जाते हैं। इसलिए इसे लोग अपने घर-आँगन में, घर के निकट की बाड़ी या बागों में, जहाँ की जमीन भीठ के मुकाबले की होती है, लगाते हैं। इसका पेड़ मझोले कद का होता है। इसकी जड़ें जमीन के अन्दर अधिक दूर तक नहीं पहुँच पातीं, इसलिए भी इसके लिए भोठ की जमीन अनुकूल होती है। खेत की ऐसी जमीन, जो अधिक नीची हो अमरूद की फसल को बिगाड़ देती है क्योंकि बरसाती नदी-नालों का पानी अमरूद की जड़ की मिट्टी को बहाकर ले

जाता है। मिट्टी के बह जाने से अमरूद की जड़ें जमीन छोड़ देती हैं और पेड़ गिर जाता या टेढ़ा हो जाता है। इसके अतिरिक्त, आम के पेड़ की भाँति अमरूद का पेड़ अधिक दिनों तक बरसाती पानी बरदाश्त नहीं कर पाता। अधिक पानी से भी अमरूद का पेड़ सूखने लगता है, इसलिए अमरूद की बागवानी के लिए हमेशा ऊँची और कुछ कड़ी मिट्ठी वाली जमीन का चुनाव करना चाहिए।

बीजों से स्वयं जो पेड़ उग आते हैं, उनमें फल छोटे, बीज अधिक और गूदा कम होता है, इसलिए बागों में हमेशा अमरूद की अच्छी कलमें लगानी चाहिए। कलमी पेड़ का फल बहुत बड़ा, कम बीज, अधिक गूदा वाला और अधिक मधुर होता है। जहाँ बीजों से उत्पन्न पेड़ कम-से-कम तीन-चार साल में फलता है, वहां कलम का पेड़ दूसरे वर्ष से फूलने-फलने लगता है। बड़े फल होने के कारण भी, आर्थिक दृष्टि से कलमी जैसे अमरूद लाभदायक हैं। वाराणसी, इलाहाबाद और लखनऊ जैसे स्थानों के अमरूद की कलमें भारत में विख्यात हैं। सुपारी की शकल का एक प्रकार का और भी अमरूद होता है। जिसे बिलायती अमरूद कहते हैं। बाग-बगीचे से जिन्हें विशेष प्रेम है, वे लोग इसे लगाते और जानते हैं। इसका पेड़ अपेक्षाकृत छोटा होता है। पत्ते भी साधारण अमरूद के पेड़ भी अपेक्षाकृत छोटा होता है। पत्ते भी बहुत छोटे होते हैं। रंग-भेद से अमरूद के फल की दो किस्में हैं सफेद और लाल।

अमरूद का पेड़ दस-बारह हाथ के फासले पर लगाना चाहिए। ज्यादा नजदीक लगने से उसकी शाखाएँ फैलकर आपस में मिल जाती हैं। शाखाओं के मिलने से पेड़ों का विकास रुक जाता है और फल कम लगते हैं। अमरूद लगाने के बाद उसकी जड़ के चारों

ओर पानी ठहरने के लिए, एक-डेढ़ हाथ चौड़ा थाला बना देना चाहिए और जड़ के कुछ उपर तक मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए। इसके पेड़ में विशेष खाद की आवश्यकता नहीं पड़ती और यदि हो तो गोबर, पेड़ों के सूखे पत्तों और कुछ बालू-मिली मिट्टी से तैयार की हुई खाद का उपयोग करना चाहिए।

खाद बनाने की विधि—गोबर पाँच सेर, किसी पेड़ के सूखे पत्ते बीस सेर, कुछ बालू-मिली मिट्टी एक्क मन—इन्हें अन्दाज से मिला एक गढ़े में डाल दें और ऊपर से पानी छिड़क कर पैर से दबा दें। पाँच-छ दिनों तक धूप लगने दें। उसके बाद फिर पानी छिड़ककर दूसरी मिट्टी से ढँक दें। तीन महीने के बाद ऊपर की ढँकी मिट्टी हटाकर खाद निकाल लें। अमरूद के पेड़ की जड़ के थाले को खुरपी से खोदकर जमीन हलकी कर लें। ऊपर से तीन-चार अंगुल ऊँची खाद, जड़ और थाले में बिछाकर खुरपी से पीटकर बराबर कर दें और पानी भरकर छोड़ दें। गरमी के दिनों में सायंकाल और जाड़े में प्रातःकाल पेड़ों के थाले में पानी डालना चाहिए। गरमी के दिनों में नित्य पानी डालना चाहिए, किन्तु जाड़े के दिनों में तीसरे-चौथे दिन सींचने से उनका भलीभाँति विकास होता है। यदि वर्षाकाल में ज्यादा दिनों तक सूखा पड़े तो एकाध बार पेड़ों को सींच देना चाहिए।

यह पेड़ समशीतोष्ण ताप चाहता है अतः यह विन्ध्य गिरि-माला के मध्य भू-भाग में विशेष रूप से विकसित, पुष्पित एवं फलित होता है। हिमगिरिमाला के भू-भाग की पृथ्वी, जल, वायु एवं ताप इसके अनुकूल नहीं पड़ता। उपर्युक्त जलवायु में उत्पन्न अमरूद के पेड़ विशेष बड़े नहीं होते और स्वाद में एकदम फीके होते हैं। जाड़े की फसल वैसी जलवायु में नहीं के बराबर होती है और यदि होती भी है तो कई महीनों में जाकर फल पकते हैं।

हाँ, वर्षा ऋतु में कुछ उष्णता पाकर इसकी फसल उक्त जगहों में होती है, लेकिन वह बहुत ही जल्दी समाप्त हो जाती है। यों तो प्रायः वर्षाकाल के सभी फल द्राक्ष-शर्करा-विहीन होते हैं, लेकिन शीत-प्रधान देशों के अमरूद तो द्राक्ष-शर्करा से शून्य होते हैं। उधर के लोग प्रायः वर्षाकाल में इस फल को खाने से डरते हैं। उन लोगों का अनुभव है कि यदि वर्षा-काल के अमरूद खाये जायँ तो शीत ज्वर हो जायगा।

कलमी अमरूद की फसल जब तैयार होने पर होती है, उस समय जीव-जन्तुओं से उसकी रक्षा करना भी बागवानी का महत्त्व-पूर्ण कार्य हो जाता है। यदि इस कार्य में ढिलाई की गयी तो सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। दिन में प्रधानतः कौए, सुग्गे आदि परिन्दों, गिलहरियों, रात्री में अबाविल चिड़ियों और चमगादड़ों से इनकी रक्षा करनी चाहिए। पेड़ों को रात भर बैठ-कर अगोरना और पटाखे की आवाज से फसल की रक्षा करना खर्चीला है। लीचो, आम आदि फलों और मक्का आदि अन्न के खेतों की रक्षा के लिए यह ढंग ठीक है, लेकिन केवल अमरूद के लिए सब से सुगम विधि यह है कि प्रत्येक पकने योग्य अमरूद के फल को, पुराने चीथड़ों से लपेटकर बाँध दिया जाय।

वनस्पति-शास्त्र इसका पेड़ मझोले कद का होता है। केवल बीज से उत्पन्न पेड़ जब तक एक-डेढ़ हाथ का रहता है, तब तक उसमें विशेष शाखाएँ नहीं फूटतीं। जैसे-जैसे पेड़ बड़ा होता है, वैसे-वैसे शाखाएँ निकलने लगती हैं। जब पेड़ तीन-चार हाथ लम्बा हो जाता है तब शाखाओं में डंठल और उनमें पत्ते लगते हैं। डंठल के दोनों ओर पत्ते होते हैं। प्रारम्भ में पत्ते नुकीले होते हैं, लेकिन कुछ पुराने पड़ने पर उनकी नोक समाप्त हो जाती हैं। पत्ते मोटे दल के, ऊपर की ओर चिकने, नीचे की ओर कुछ खुर-

दरे एवं नसों से युक्त होते हैं। यदि पत्ते के बीच के दल अलग कर दिये जायँ तो पूरे पत्ते में केवल आठ-दस नसों के जाल मात्र रह जाते हैं। ताजे सावूत पत्तों की नसें अलग से ही दृष्टिगत होती हैं।

इसकी जड़ पृथ्वी के भीतर अधिक नहीं पहुँच पाती और जड़ों का विस्तार भी अन्य पेडों की अपेक्षा कम रहता है। नये पेड़ों के काठ में अन्दर हीर नहीं होती, पुराने पेड़ों में शीशम आदि की भाँति थोड़ी हीर निकलती है। इसकी शाखाएँ जहाँ से फूटती हैं। वहाँ की गाँठ इतनी चिकनी, मजवूत और फैली हुई होती हैं कि उनके दोआबे में मनुष्य सुखपूर्वक कुछ क्षण विश्राम कर सकता है। धड़ या मोटी शाखाओं के ऊपर की एक परत के पतले छिलके धूप में सूखकर आसानी से उत्तर जाते हैं लेकिन दूसरे छिलके काष्ठ से आसानी से अलग नहीं होते। देखने में समूचा पेड़ हल्का गैरिक वर्ण का होता है। इसकी बरसाती फ़सल के फूल चैत-बैशाख में और जाड़े की फसल के भादों-आश्विन में लगते हैं। इसके वृक्षों में बड़े वेले के फूल की तरह सफेद कलियाँ निकलती हैं। कलियों के ऊपर हरे छिलके अलग चढ़े रहते हैं। फूल खिल जाने के बाद, ये छिलके अलग हो जाते हैं। फूलों से भीनी-भीनी गन्ध निकलती है। फूलों के बीच में सफेद बाल की तरह, आधे इंच के रेशों में, ऊपर की ओर, छोटी राई के बराबर बिन्दु लगे रहते हैं। एक-दो दिनों के बाद बायु के झोंके से या कुम्हलाकर पुष्पपंखुरियाँ या बिन्दु-सहित पराग सूत्र झर जाते हैं और लघु फल दृष्टिगत होने लगते हैं। कच्ची दशा में फल हरे रहते हैं, लेकिन जैसे-जैसे पकने लगते हैं, वैसे-वैसे वे सफेद, पीले-सफेद, सफेद-लाल या पीले-लाल हो जाते हैं।

चाकू से छीलने या उबालने—किसी भी दशा में, केला या आम आदि फलों की भाँति, इसके फल से छिलका या अस्तित्व

पृथक नहीं होता। गूदे का रंग सफेद होता है। किसी-किसी पेड़ के फल हलके गुलाबी रंग के भी होते हैं। फल में ठोस गूदा-ही-गूदा रहता है। बीच में कुछ बीज होते हैं। अमरूद के फल के भीतर बड़ी सरसों की आकृति के सफेद, तिकोने, कठोर बीज होते हैं, जो गूदे के सहारे चिपके, गोलाकार दशा में और ठोस गूदे से शीघ्र पृथक् होने वाले होते हैं। ऐसा, साधारण बीजू अमरूद में होता है। कलमी अमरूद में बीज बहुत ही कम होते हैं। उसमें बीज वाले स्थान का गूदा, फल के ठोस गूदे की अपेक्षा विशेष घुलनशील, मुलायम और पिघला हुआ होता है। कलमी अमरूद में भी एक अच्छे दर्जे का अमरूद होता है। वह बहुत ही बड़ा करीब चार-पाँच छटाँक का होता है। उसके अन्दर मुश्किल से चार-पाँच बीज मिलते हैं।

वैद्यक मत—आयुर्वेदिक द्रव्य-गुण-शास्त्र की दृष्टि से अमरूद स्वादिष्ट, मधुर, ग्राही, किंचित् अम्ल, कषाय रस-वाला, अत्यन्त शीतल, तीक्ष्ण, भारी, कफ-कारक, वात-वर्द्धक- उन्माद-नाशक, पित्त-शामक, वीर्यवर्द्धक, रुचिकारक, त्रिदोष-नाशक, दाह, भ्रम और मूर्च्छा-निवारक है।

हिकमत की राय—हिकमत की किताबों में लिखा है कि—अमरूद एक मशहूर मेवा है। जिसका हर शख्स ज्यादातर इस्तेमाल करता है। इसका रंग हरा, सफेद, पीला, सुर्ख और चितकबरा होता है। यह ठंढे मिजाज वालों को मुआफिक नहीं आता। अगर इसके खाने से देह के किसी हिस्से में कुछ बिगाड़ पैदा हो जाय या नुकसान पहुँचे तो लगातार कई दिनों तक अदरक का मुरब्बा इस्तेमाल करना चाहिए। अदरख उसकी खराबी को मिटाती है।

यह पहले दर्जे का ठंढा और दूसरे दर्जे में गरम तासीर वाला है। ठंढे मिजाज वाले या कमजोर मेदे वालों को यह अनुकूल नहीं आता। यह बदन में ताकत पैदा करने वाला, मुलायम, तबीयत को खुश करने वाला और भूख लगाने वाला है। इसके इस्तेमाल से कलेजे और दिमाग में कूबत पहुँचती है। यह मेदे में गिजा हजम करने की ताकत पैदा करता है। इसके पत्ते दस्त की बीमारी में मुफीद होते हैं। फूल कलेजे को कूबत पहुँचाता, खून को बन्द करता, आँखों की सोज को मिटाता और दस्त को बन्द करता है। खूब पका और मीठा अमरूद पेचिश में फायदेमन्द है। खाना खाने के बाद लेने से हलका दस्तावर है। पके अमरूद का काढ़ा पिलाने से छोटे बच्चों के दस्त और काँच निकलने की बीमारी आराम होती है। छोटे पत्तों में कमजोर मेदे को दुरुस्त करने का गुण है। मुलायम पत्तों का काढ़ा देने से हैजे की बीमारी अच्छी होती देखी गयी है। दाँतों के दर्द में अमरूद के पत्ते चबाने से राहत मिलती है।

नव्य मत—कर्नल चोपड़ा का मत है कि अमरूद की जड़ और छाल में टेनिन एसिड विशेष मात्रा में पाया जाता है। इसमें कैलशियम और आक्जेलेट के रवे पाये जाते हैं। पत्तों के काढ़े का कुल्ला मसूड़ों की शोथ और मुखपाक को दूर करने वाला, जड़ का छिलका अति संकोचक, ज्वरहर तथा आक्षेप-नाशक है। इसके फल रेचक और पत्ते रुचि उत्पन्न करने वाले होते हैं।

रासायनिक संघटन—अमरूद में ये रासायनिक पदार्थ पाये जाते हैं—कैलशियम, फास्फोरस, लोहा, विटामिन 'सी', ग्लूकोज, टेनिन एसिड, आक्जेलेट-कण आदि। इसमें श्वेतसार तथा विटामिन 'ए' एवं 'बी' आदि नहीं पाये जाते।

रोगों पर प्रयोग—विजया-मद से पीड़ित रोगी को दो-चार अमरूद खिलाना या उसके पत्तों का दो-ढ़ाई तोले रस पिलाना

चाहिए। इससे मद शान्त हो जाता है। विकृत पित्त की शान्ति के लिए, प्रातःकाल अमरूद के बीजों को पीसकर, प्रपानक (शर्बत) बनाकर पिलाना चाहिए। शर्बत में कच्ची चीनी (खाँड़) का उपयोग करें।

व्यावहारिक उपयोग—१—अमरूद की लकड़ी चिकनी, चिमड़ी और मजबूत होती है; इसलिए इसकी लकड़ी से बन्दूक के कुन्दे बनाए जाते हैं। २—इसके पत्तों से मदकची लोग मदक बनाते हैं। ३—इसकी छाल को उबालकर उससे रंगरेज कपड़े रँगते हैं।

पाक-शास्त्र—अधिकतर बद्धकोष्ठ वाले अमरूद की फसल के समय एक-दो अमरूद को आग में पकाकर भरता (चोखा) बनाकर व्यवहार करते हैं। इससे मल की शुद्धि हो जाती है। भरते का स्वाद साधारण होता है। इसके अतिरिक्त इसका मुरब्बा, साग तथा अन्यान्य भाजियों की भाँति रायता बनाकर लोग शौक से खाते हैं। शहरों में अमरूद का कचालू भी विशेष रूप से व्यवहृत् होता है। अमरूद की जेली भी विशेष लोकप्रिय हो चुकी है।

उष्ण कटिबन्ध के वासी हम भारतीयों के लिए, अमरूद प्रकृति का एक विशिष्ट उपहार है। यह इसी देश में अधिक उत्पन्न भी होता है। जिस ऋतु में यह फलता है, उस ऋतु में यहाँ वालों को इसकी अत्यन्त आवश्यकता रहा करती है। यों तो यह बारहों मास फलता है, लेकिन विशेषतः शीतकाल की ही यह फसल है। आयुर्वेद-विज्ञान की दृष्टि से शीतकाल में पित्त कुपित होता है। उसकी शान्ति के लिए पित्तशामक पदार्थों का सेवन करना पड़ता है, तभी विकृत पित्त अपनी साम्यावस्था में रह सकता है। अमरूद

अपने सौम्य गुण के कारण, इस काम के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। यह सात्विक और मेध्य होने के कारण छात्रों तथा मष्तिष्क से काम लेने वाले बुद्धिजीवियों की दैनिक आहार-सूची में सादर स्थान पाने के योग्य है।

फलों में यह कितना ऊँचा स्थान रखता है यह वैद्यक मत से जाना जा सकता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जिस ऋतु में यह अधिक फलता है, उस ऋतु में साधारण साग-भाजी की तरह अल्प मूल्य में ही इसे खरीदा जा सकता है। प्राकृतिक चिकित्सकों ने इसे 'गरीबों का सेव' नाम से पुकारा है, जो सर्वथा उपयुक्त है। नवीन मत से भी यह उत्तम फल समझा जाता है। आधुनिक आहार-शास्त्रियों ने इसे विटामिन 'सी' का भण्डार सिद्ध किया है। 'सी' विटामिन की दृष्टि से अपने वर्ग के फलों में, इसका अपना स्वतन्त्र स्थान है। शरीर में, विटामिन 'सी' की प्राप्ति के लिए, अमरूद का अवश्य व्यवहार करना चाहिए। एक मनुष्य के दैनिक आहार में जितना विटामिन 'सी' आवश्यक होता है, उतना एक बड़ा-सा अमरूद खा लेने से उसे प्राप्त हो जाता है।

अमरूद हमेशा ताजा और कच्चा ही खाना लाभदायक है। बहुत से लोग आग में पकाकर इसका भरता बनाते या नमक और खटाई डालकर साग बना लेते हैं। कई विटामिन अग्नि की साधारण उष्णता बरदाश्त कर भी लेते हैं; लेकिन विटामिन 'सी' अग्नितापमें सर्वथा नष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त, इसे कई दिनों तक बासी रखने, सुखा देने या इसमें क्षार-प्रधान खटाई का मिश्रण कर देने से भी उक्त विटामिन नष्ट हो जाता है। विटामिन 'सी' की प्रधानता के कारण ही प्रायः यह दंत-रोग, पाचन-यन्त्र की कमजोरी, रक्तचाप का बढ़ना, पक्षाघात, ग्रन्थिवात,

हड्डियों की विकृति या कमजोरी, गर्भावस्था में अधिक वमन एवं रक्त-दोष आदि उपद्रवों को दूर करने में समर्थ होता है। इसके अतिरिक्त, रासायनिक दृष्टि से इसके अन्दर प्राप्त होने वाले पदार्थ भी, उक्त रोगों को दूर करने में अवश्य सहायक होते हैं। इसमें वर्तमान प्राकृतिक लोह रक्त-शुद्धि के लिए, चूना हड्डियों के लिए, अस्थिसार (फास्फोरस) हड्डियों और मस्तिष्क के लिए तथा शर्करा शारीरिक उष्णता एवं स्फूर्ति उत्पन्न करने के लिए उपयोगी है।

सदा कोष्टवद्धता के कारण कष्ट पाने वालों को, कुछ दिनों तक, नियमित रूप से, अमरूद का अवश्य सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से तीन-चार दिनों के बाद से ही मल की शुद्धि और कोष्टबद्ध के कारण उत्पन्न नेत्र-दाह, शिरःशूल तथा मादकता दूर होने लगती है। हकीम और वैद्य प्रायः पागलों को इसका पथ्य देते हैं। रोगी अपनी इच्छा के अनुसार जितना अमरूद खा सकता है, उसे खाने दिया जाता है।

अमरूद खाने का सबसे अच्छा समय दोपहर है। भोजन के घंटे-दो-घंटे बाद, बड़ा-सा एक या दो अमरूद लेकर जल से धो लें और दाँतों से काट-काटकर उसे खायें। जहाँ तक हो सके, चाकू से काटे बिना और बिना छीले ही खायें। अमरूद का छिलका हटा देने से उसका बहुत-सा लाभदायक अंश नष्ट हो जाता है। इसे दाँतों से काटकर खाने से उनके विकार नष्ट हो जाते हैं और धीरे-धीरे दंत-पंक्ति दृढ़ हो जाती है।

कुछ लोग प्रातःकाल खाली-पेट अमरूद का सेवन करते देखे गये हैं। अभ्यास के कारण, उनके स्वास्थ्य में किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं होती। जो लोग शुरू-शुरू प्रातःकाल के जलपान में अमरूद को सम्मिलित करना चाहें एक-बएक केवल अमरूद

ही खाना प्रारम्भ न कर दें। ऐसा करने से, सम्भवतः कुछ जुकाम या साधारण ज्वरांश होने का डर रहता है। खासकर जिनकी वात या कफप्रधान प्रकृति होती है, उन्हीं को ऐसा होता है। पित्त-प्रधान प्रकृति वालों को तो प्रातःकाल खाली-पेट अधिक अमरूद खा लेने पर भी कुछ कष्ट अनुभव नहीं होगा। वात-कफ-प्रधान प्रकृति वाले यदि प्रारम्भ में सन्तरा, पनकोरा नारियल, पकाकेला, गाजर तथा मूली आदि कई प्रकार के मधुर और रसीले फलों के टुकड़ों के साथ अमरूद के टुकड़े का पँचमेल बनाकर सबेरे के जलपान के काम में लावें तो फिर जुकाम आदि का भय नहीं रह जाता। फल-सेवन की यह उत्तम विधि है। जब अभ्यास हो जाय तब धीरे-धीरे अन्य फलों को क्रमशः कम कर, केवल अमरूद को ही अपने जलपान की मुख्य वस्तु बना लेना चाहिए।

स्वास्थ्य संवर्धन के लिए उपादेय पुस्तकें

मनोवेग	और	स्वास्थ्य	३० पैसे
भोजन	और	स्वास्थ्य	३० पैसे
व्यायाम	और	स्वास्थ्य	३० पैसे
स्वच्छता	और	स्वास्थ्य	३० पैसे
मादक वस्तुएँ	और	स्वास्थ्य	३० पैसे
आचार विचार	और	स्वास्थ्य	३० पैसे

स्वास्थ्य साधन (उक्त ६ पुस्तकें सजिल्द) २-००

श्यामसुन्दर रसायनशाला प्रकाशन, गायघाट, वाराणसी

परम उपयोगी फल : पपीता

परिचय——पपीता का सामान्य जनताकी अपेक्षा प्रबुद्ध समाज में विशेष उपयोग होता है। चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट और हारीत आदि प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इसका उल्लेख न होने के कारण तथा इसके नामों के विषय में विचार करने पर यह विदेशी फल है। आलू, टमाटर तथा सुरती आदि की भाँति इसे भी भारतीय वानस्पतिक संसार में हिलमिल जाने का गौरव प्राप्त हुआ है। नवीन आयुर्वेदिक निघण्टु-ग्रन्थों में इसका उल्लेख है। भाव मिश्र ने भावप्रकाश' में 'चाय' का जैसे रूपपरक नाम 'कृष्ण पत्रम्' रखकर उसे भारतीय वनस्पतियों की श्रेणी में ले लिया, उसी भाँति पपीते के भी 'वातकुम्भ फल', 'मधु एरण्ड फल' तथा 'मधु कर्कटी' आदि नाम रख दिये हैं।

लैटिन में इसे कोरिका पापैया, अंग्रेजी में पपाव, तुर्की में प्यागाई, कर्नाटक में पोप्लुस, मलयालम में पप्यायम्, तमिल में पप्याय, तेलुगु में बोप्याई, गुजराती में पोपैया, मराठी में पोपया, पपई, बंगला में वाताविलेबु तथा हिन्दी में पपीता कहा जाता है। बंगला को छोड़ प्रायः सभी भारतीय भाषाओं के नामों और लैटिन, अंग्रेजी तथा तुर्की के नामों में विशेष साम्य है। इसके अतिरिक्त,यूनानी एवं एलोपैथिक चिकित्सा-ग्रन्थों में पपीते के गुण-दोषों का विशद विवेचन होने से भी इसके इतिहास के विषय में उपयुक्त धारणा बनती है।

पपीते की खेती पहले यहाँ प्रायः नहीं की जाती थी, पर अब बड़े और मीठे पपीते के बीज, लोग घर आँगन में छींट देते हैं।

इनसे स्वयं पेड़ हो जाते हैं और वे फूलने-फलने लगते हैं। इसकी विभिन्न उपयोगिताओं के कारण इसकी खेती की ओर भी ध्यान गया है। ग्राम-विकास-योजनाओं के क्रम में जगह-जगह इसकी खेती शुरू हो गई है।

यह सभी प्रदेशों में न्यूनाधिक पाया जाता है। यह मीठा-फीका, छोटा-बड़ा तथा लम्बा-गोल होता है, किन्तु सिंगापुरी पपीता अपना विशेष महत्व रखता है। वहाँ के पपीते एक-एक हाथ तक लम्बे, कम बीज वाले तथा अधिक मधुर होते हैं। आकार और स्वाद की भिन्नता के कारण इसकी कई जातियाँ होती हैं। इसके अतिरिक्त, किसी-किसी जाति का पपीता बारहों मास फलता है।

यद्यपि पपीते के पेड़ साधारण जमीन में भी उगकर बड़े हो जाते हैं और फल देने लगते हैं तथापि इसकी खेती के लिए जमीन का चुनाव कर लेने से पेड़ों और बाद में फलों का अच्छा विकास होता है। एक स्थान पर तीन-चार बिसवे में पाँच-छ पपीते के पेड़ लगे थे। उनमें एक पेड़ ऐसे स्थान पर था जहाँ गढ़ा खोदकर खेतों की खाद के लिए गोबर और राख रखी जाती थी। अन्य सभी पेड़ों की अपेक्षा गढ़े वाले पेड़ में अधिक संख्या में फल लगे और वे पुष्ट एवं एक रंग-रूप के हुए। इसके पेड़ उगाने के लिए कुछ तर और उर्वर जमीन की आवश्यकता होती है। जब पेड़ दो फुट का हो जाय तब यदि जमीन में तरी न भी रहे तो कोई विशेष क्षति नहीं होती। विशेष तर जमीन में कभी-कभी इसके पेड़ गल जाते हैं। इसका पेड़ मझोले कद का होता है और इसकी जड़ एक-डेढ़ हाथ तक ही साधारणतः जमीन के नीचे तक जाती है। पेड़ का रंग सफेद होता है। काटने पर इसकी छाल भी सफेद निकलती है। फूल सफेद, किंचित् केसर-से पीले, फल हरे और पकने पर पीले हो जाते हैं। बीज के ऊपर जेर की भाँति पतली झिल्ली चढ़ी

रहती है। बीज की आकृति कालीमिर्च की तरह होती है। मादा जाति के पेड़ में फूल के पश्चात् फल लगते हैं लेकिन नर जाति के पेड़ में केवल फूल लगकर रह जाते हैं, फलते नहीं। विभिन्न जाति की मक्खियों के द्वारा ही विशेषतः इस पेड़ में भी गर्भाधान-क्रिया होती है, ऐसा आधुनिक वनस्पति-शास्त्रियों का अनुभव है।

गुण-दोष—आयुर्वेदिक मत से कच्चा फल रोधक और कफ-वात को कुपित करने वाला है। पका फल मधुर, रुचिकर, पित्त-नाशक, गुरु, किंचित् कटु, वीर्य-वर्द्धक, हृद्य, उन्माद-हर, स्निग्ध, वात तथा व्रणनाशक है। यूनानी मत से पका फल अग्नि-दीपक क्षुधावर्धक, पाचक, दुग्धप्रद, मूत्रल, उदर-दाह, आध्मान, प्लीहा, मेद और मूत्राशय के रोगों का नाशक, अश्मरी (पथरी) में लाभ-दायक, श्लेष्म के साथ आने वाले रक्त का रोधक, रक्तार्श एवं मूत्र-नली के व्रण में लाभदायक है। इसका दूध लगाने से चर्मरोग नष्ट होते हैं। बीज कृमि-नाशक, ऋतुधर्म को नियमित करने वाले एवं गर्भपातकारक हैं।

नव्य मत—डाक्टर जार्ज हार्स ने लिखा है कि अजीर्ण के प्रवृद्ध लक्षणों—आहारोत्तर अरुचि, अनिद्रा, शिरः शूल आदि विकृतियाँ इसके रस-सेवन से दूर होती हैं। उदरस्थ संचित आम का नाश करने की इसमें अद्भुत क्षमता है। बालकों की अपेक्षा बड़ी उम्र वालों के अजीर्ण में यह विशेष लाभदायक है। अम्लपित्त तथा आम्ल-उद्गार इसके रस के कुछ काल तक व्यवहार कर लेने के अनन्तर मिट जाते हैं।

प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक श्री जानकी शरण वर्मा के मता-नुसार इसमें दो-तीन ऐसे प्राकृतिक लवण हैं जिनसे वह अजीर्ण, प्लीहा, यकृत-दोष और अर्श में विशेष गुणकारी सिद्ध होता है।

यह शीतल और दिरुचि वर्धक फल है। इसमें विटामिन 'ए' विशेष रूप से होने के कारण नेत्र-विकृति, मूत्राशय एवं वृक्क (गुर्दे) सम्बन्धी व्याधि तथा शारीरिक-वृद्धिरोध आदि उपद्रवों से यह रक्षा करता है। 'सी' विटामिन की विद्यमानता होने के कारण यह अस्थि-विकृति, दन्त-रोग, रक्तभारातिवृद्धि, पक्षाघात, ग्रन्थिवात एवं वमन आदि व्याधियों से बचाता है। इस फल के अन्दर 'कारपेन' नामक क्षारीय द्रव्य पाया जाता है जो रक्तभारातिवृद्धि रोग पर अपना अच्छा प्रभाव करता है।

पाक-शास्त्र—कच्चे पपीते का साग बनता है। पके पपीते का भी साग बनाया जाता है। कच्चे पपीते के साग की अपेक्षा पके पपीते का साग विशेष स्वादिष्ट होता है। घी, चीनी और दूध के साथ पके पपोते का हलुआ भी बनता है। कच्चे पपोते को छीलकर तथा बीज एवं जाली को अलगकर अच्छी तरह उबाल दिया जाता है। फिर उबले पपीते को सिलपर पीसकर घी में जरा सुर्ख भूना जाता है और चीनो का सीरा डालकर एक प्रकार का हलुआ बनाया जाता है। छिलके, बीज और जाली निकाले हुए कच्चे पपीते को कद्दूकस पर कसलें और मन्द आँच पर हलका उबाल लें। फिर एक तार की चाशनी में डालकर उसके सूखे लच्छे बनायें। पेठे और कद्दू के लच्छों की तरह इसका भी स्वाद होता है। मांसाहारियों को जब कभी मांस जल्दी पकाने की आवश्यकता होती है या विशेष परिपुष्ट जीवों का मांस उन्हें पकाना पड़ता है, उस समय वे पकाते हुए मांस में कच्चे पपीते के दो-चार टुकड़े छोड़ देते हैं, इससे मांस बहुत जल्दी सिद्ध हो जाता है। यहाँ तक कि मांस हड्डियों को भी छोड़ देता है। पपीते में मांस को गलाने की विलक्षण शक्ति है।

सौन्दर्य-वर्द्धक पपीता—पाश्चात्य रासायनिक पपीते के द्वारा कुछ शृङ्गार-सामग्री भी प्रस्तुत करने लगे हैं। सौन्दर्यवर्द्धक चूर्ण प्रलेप (हेजलीन या पोमेड-वेसलीन) आदि में इसके कुछ खास तत्त्वों को पृथक कर इनका मिश्रण करते हैं। जो कार्य मिश्रित सौन्दर्य-सामग्रियों से होता है वही कार्य सुपक्व पपीते से भी होता है। पके पपीते को, जो खूब घुल गया हो चाकू से काट कर उसके गूदे को चेहरे पर कुछ देर तक उबटन की तरह मलें। जब पन्द्रह-बीस मिनट के बाद वह सूखने लगे, तब चेहरा जल से धो डालें और मोटे तौलिये से अच्छी तरह चेहरे को पोंछकर शीघ्र मीठा तेल लगा लें। एक सप्ताह तक इस प्रयोग को करें। आपके मिलने वाले आपसे अवश्य पूछ बैठेंगे कि "भाई, इन दिनों तुम बहुत ही सुन्दर जँचते हो" उपर्युक्त योग के व्यवहार से चेहरे की झुर्रियाँ, कालिमा और मैल हट जाता है और चेहरा साफ हो जाता है तथा चेहरे पर कोमलता आ जाती है।

पपीते से कपड़ों की सफाई—कपड़ों के धब्बे दूर करने के लिए, धब्बे की जगह कच्चे पपीते का दूध घिस देना चाहिए। जब दूध सूख जाय तब कपड़े को रगड़कर धो डालें। साधारण धब्बे तो पके पपीते के गूदे को कपड़े पर रगड़ देने से ही छूट जाते हैं। पपीते के पेड़ से सूखे पत्ते और डंठल लाकर जलालें और उसकी राख को एक बाल्टी में रखकर और उसे पानी में घोल कर उस पानी को गमछे में गट्ठर की तरह बाँधकर लटका दें। नीचे पानी इकट्ठा होने के लिए बाल्टी रख दें। आधे घंटे में पीले रङ्ग का पानी बाल्टी में इकट्ठा हो जायगा। पानी चू जाने पर गमछे की राख को फेंक दें। उसी पानी में कपड़े उबालकर साफ करें। आप यदि एक बार इस विधि से कपड़े साफ कर लेंगे तो साबुन आदि को भूल जायँगे।

आगत क्रमां... २३५७...
दिनांक...

लुभावना फल : खरबूजा

ऋतु-फल मानव-स्वास्थ्य से संबद्ध है। हम जिस कटिबन्ध के निवासी हैं, वहाँ की प्रत्येक ऋतु अपनी वानस्पतिक निधि से पूर्ण समृद्ध है। अन्यान्य भौतिक साधनों की भाँति ऋतु फल भी हमें प्रकृति के विशेष उपहार के रूप में प्राप्त हैं। जिस समय दिवाकर की सतरंगी किरणों से रूप, रंग और गुण ग्रहण कर रंग-बिरंगे फल थाल में परोसे जाते हैं, उस समय हृदयआल्हादक प्रवृत्ति जाग उठती है और आहार-ग्रहण करने की विशेष रुचि उत्पन्न हो उठती है।

फल हमं भारतीयों का आहार है। अन्न का स्थान हमारे लिये दूसरी श्रेणी का होना चाहिये। कंद-मूल-फल भोगी हमारे पूर्वज ऋषियों की आहार सम्बन्धी यही शिक्षा रही है। यह शिक्षा हमारे आचरण का अंग वन चुकी है।

ग्रोष्म की तपन है। सूर्य की प्रखर किरणें जड़ और चेतन जगत् के रस-भाग का शोषण कर रही हैं। एक तो उष्ण प्रदेश और ऊपर से उसी गुण-धर्म से युक्त ऋतु! प्राणी तो विशेष कष्ट का अनुभव करेगा ही, लेकिन दूसरी ओर भी हमें दृष्टिपात करना भूल न जाना चाहिये। जिस भूमि में हम वास कर रहें हैं, उसमें प्राकृतिक ऋतु-विभाजन कितना महत्त्वपूर्ण है और रस के सहारे होने वाली उपज हमें कितना आरोग्य और संतृप्त रखती चली आ रही है। ग्रीष्म ऋतु के कारण वातावरण के शोषण से प्रभावित शरीर-यन्त्रों की क्षति की पूर्ति के लिए सुमधुर तथा सुस्वादु फलों का यहाँ ढेर लगा रहता है। खरबूजा भी उन्हीं फलों में है।

परिचय और द्रव्य-गुण—खरबूजे की कई जातियाँ हैं। इसकें रंग, आकार, स्वाद और गन्ध में भी भिन्नता होती है। सभी फलों की भाँति इस पर भी भौगोलिक प्रभाव पड़ता है। सूखी आब-हवा और गर्म स्थानों का यह फल है। लखनऊ का खरबूजा विशेष प्रसिद्ध है, लेकिन सहारनपुर, अलीगढ़ और जौनपूर के खरबूजे भी स्वाद में उत्तम होते हैं। बिहार के मुजफ्फरपुर और पटना के खरबूजे भी, जिसे वहाँ के लोग 'लालमी' कहते हैं, उत्तम स्वाद के और विशेष मधुर होते हैं। लखनऊ के खरबूजे ऊपर से अधिक पीले और भीतर से सफेद होते हैं। पटना के नारंगी के रंग के।

वैद्यक में इस फल का वर्णन है। इसके कई नाम गुणपरक, कई स्वादपरक और कई रूपपरक रखे गये हैं। वैद्यक शास्त्र के द्रव्य-गुण-अध्याय में, जिसे निघंटु भी कहते हैं, इसी प्रकार के पदार्थों के नाम मिलते हैं। फिर कोशकारों ने उन्हीं निघंटुओं में से उन नामों को ग्रहण कर अपने कोशों में सम्मिलित किया है। अन्यान्य द्रव्यों की भाँति खरबूजे के नाम भी गुण, स्वाद और रूपपरक ही हैं। यथा—षड्-भुजा—छ रेखाओं से युक्त, षड्मुखा छ मुख वाला, वृत्त कर्कटी-रेखाओं से युक्त आदि खरबूजे के रूप को ही प्रकट करने वाले नाम हैं। इसी भाँति मधुफला-मीठा फल, तिक्तफला–तिक्तफल (कच्ची अवस्था में) और मधुपाका–मीठे परिपाक वाला–ये नाम उसके स्वाद को व्यक्त करते हैं।

जब फल कच्चा और हरा रहता है, उस समय खाने में तीता और पक जाने पर मधुर हो जाता है। पका फल खाने के बाद जब जठराग्नि में पचने की दशा में होता है, उस समय यदि डकार आये तो उसमें कुछ खट्टे स्वाद का अनुभव होता है। भलीभाँति पका फल अमृत के समान, खाने के बाद मन को तृप्त करने वाला,

पौष्टिक और वीर्यवर्धक है। यदि दाह के रोगियों को इसका व्यवहार कराया जाय तो यह दाह को शान्त कर देता है। विशेष परिश्रम के कारण यदि शरीर में थकावट का अनुभव हो तो उस दशा में खरबूजे का व्यवहार करने से थकावट मिट जाती है। यह मूत्र को शुद्ध करता है अर्थात् उसके विकार को नष्ठ करने वाला है। जिसका पित्त सदा बढ़ा रहता हो या जो पागलपन की दशा में हो, इस फल के खाने से उसके दोनों उपद्रव मिट जाते हैं। इसके अधिक व्यवहार से कफ बढ़ जाता है और वीर्य की उत्पत्ति होती है।

शरीर-यन्त्रों पर प्रभाव—ग्रहणीकला और मूत्रधारा-कला इन दोनों आभ्यन्तरिक शरीर-यन्त्रों पर खरबूजे का अच्छा प्रभाव देखा गया है। जहाँ यह ग्रहणी को ठीक कर उसे आहार के दूषित परिणामों से बचने की शक्ति प्रदान करता है, और मल को सूखने भी नही देता वहाँ वृक (गुर्दा) की शिथिलता को दूर करता है एवं मूत्र का शोधक है। इसमें पथरी गलाने की भी शक्ति है।

कल्प—कई अनुभवी चिकित्सक पुरातन संग्रहणी से क्षीण हुए व्यक्ति का खरबूजे से कल्प कराते हैं। उत्तर बिहार के प्राचीन वैद्यों में जिस भाँति कच्चे केले को उबालकर मखनियाँ दही के साथ खिलाकर पुरातन संग्रहणी, शोथ तथा कई प्रकार की अन्यान्य पुरातन व्याधियों से ग्रसित रोगियों के रोग दूर कर उनके शरीर को नया बनाने की प्रथा है, उसी प्रकार उत्तर प्रदेश के काशी और लखनऊ के कुछ प्राचीन वैद्य खरबूजे के प्रयोग से रोग को दूर कर शरीर को दोषों से रहित कर देते थे।

नव्य मत—नव्य मत से खरबूजे में किंचित् द्राक्षशर्करा (ग्लूकोज), क्षार (विशेषतः छिलके में), शकरकन्द की समता वाले

रवे और विटामिन 'सी' है। प्राकृतिक चिकित्सक इसकी ऋतु में स्वेच्छापूर्वक इसके सेवन की आज्ञा देते हैं।

वनस्पति-विज्ञान—नवीन वनस्पति-विज्ञान (बाँटनी) की दृष्टि से यह सपुष्प, द्विदलीय, आवृत बीज वाला, अल्पकालिक एवं प्रसर जाति की लता का फल है।

कृषि-विज्ञान—भारतीय कृषि अनुसंधानशाला, पूसा तथा नयी दिल्ली की प्रमाणिक विधि के अनुसार इसे उपजाने में कृषि-कर्म में विशेष सुविधा होती है और फल भी अच्छे हाथ लगते हैं। उपर्युक्त विधि के अनुसार खरबूजे की खेती के निमित्त दूमट या किंचित् बालू-मिश्रित दूमट जमीन का चुनाव करना चाहिये। यदि बालू वाली जमीन नदी के किनारे की सरस हो तो और भी उत्तम। उस जमीन में साधारण जोताई और हेंगाई के बाद डेढ़ फुट चौड़ी और दस इन्च गहरी, तीन फुट के अन्तर से नालियाँ बना लेनी चाहिये। उन्हीं नालियों में प्रति एकड़ सौ मन के अनुपात से किंचित् बालू मिले सड़े गोबर की खाद डालकर पहले जमीन की तैयारी कर लेनी चाहिये और फिर माघ-फाल्गुन मास में तीन फुट के फासले पर प्रति एकड़ डेढ़ सेर के हिसाब से बीज बोना चाहिये। निराई करते समय खरबूजे की बढ़ी हुई बेलों को, हल्के हाथों से क्यारियों पर चढ़ाते जाना चाहिये।

यदि अधिक परिमाण में और उत्तम श्रेणी के फलों की अभिलाषा हो तो बेलों में तीन-चार पत्ते निकल आने के पश्चात् उनकी कोंपलों को तोड़ देना चाहिए। वहाँ से पुनः नयी शाखाएँ निकलने लगेंगी और तीसरे-चौथे पत्ते पर ही पुष्प निकल आवेंगे। यदि इन पत्तों पर भी पुष्प न निकलें तो इनकी कोपलें भी तोड़ डालें। इस विधि से फिर पुष्प और उनमें फल लगेंगे। यदि और

भी उत्तम फलों को विकसित देखना हो तो जिन शाखाओं में एक-दो फल निकल आवें उनके आगे के चार-पाँच पत्ते छोड़कर बेल की कोंपलें तोड़ डालें। प्रत्येक शाखा में एक या दो फल रखना चाहिए और सम्पूर्ण बेलों में आठ-दस फलों से अधिक नहीं रखना चाहिये। हाँ, सिंचाई के समय जरा सावधानी रखने की आवश्यकता है। जब बेल में पुष्प दीखने लगें, उस समय तक यदि सिंचाई अधिक भी हो जाय तो विशेष हानि नहीं, किन्तु फल बड़ा होने पर सिंचाई कम कर देनी चाहिए और जब फल पकने प्रारम्भ हो जायँ, उस समय यदि बेलें सूख रही हों तो थोड़ी सिंचाई कर देनी चाहिए। फलों के पकते समय सिंचाई करने से फलों की मिठास कम हो जाती है। ऐसे समय में यदि सिंचाई बन्द कर दें तो और भी अच्छा। जब फल पीले और मधुर गन्ध से युक्त हो जायँ, तब उन्हें तोड़ना चाहिये। आधे चैत्र मास से आरम्भ होकर ज्येष्ट मास के अन्त तक यह फल समाप्त होने लगता है। सुपुष्ट, मधुर और पूर्ण पके हुए फलों के बीज धोकर सुखा लेना चाहिए और अगले साल बोने के लिए उन्हें बन्द बोतलों या डिब्बों में रख छोड़ना चाहिए।

पाक-विज्ञान—खरबूजे के कच्चे फलों को लौकी और कोंहड़े की भाँति छीलकर सूखी या रसेदार तरकारी बनायी जाती है। रसेदार तरकारी बन जाने के पश्चात् उसमें एक-दो चम्मच मठा या पानी में घोलकर दही डाल देने से रसा उत्तम स्वाद वाला बन जाता है। कच्चे फलों के छिलके की चने की भिगोई हुई दाल के साथ भी स्वादिष्ट तरकारी बनती है। इसके बीजों का फलहारी लड्डू बनाने में उपयोग होता है। बेसन या सूजी के लड्डू में भी इसका उपयोग किया जाता है। मैदे की गुझिया में इसके बीजों को, सूजी और चीनी इत्यादि के चूरन में मिलाकर

भरने की प्रथा है। नमकीन सेव की पंचमेल में खरबूजे के बीजों को गिरी घी में तलकर मिलाते हैं। जाड़े के दिनों में चिवड़ के फोरनीदाने में इसके भुने बीजों का खूब व्यवहार होता है।

व्यवहार—खरबूजे के पके फलों का आहार के रूप में अधिक व्यवहार होता है। उन्हें छीलकर पृथक-पृथक कर दिया जाता है और खाने के काम लाया जाता है। हमलोग अधिक मधुर रस के सेवन के अभ्यस्त हो गये हैं, इस कारण मधुर रस वाले फलों के व्यवहार के समय, यदि वे किंचित् न्यून मधुर रस वाले हुए तो उनके साथ चीनी या खाँड़ का मिश्रण करने के पश्चात् ही उन्हें ग्रहण करते है। खरबूजे के लिए भी उपर्युक्त बात लागू होती है। इसमें स्वतः फलशर्करा (ग्लूकोज) की न्यूनता रहती है; इसलिए चीनी के मिश्रण से खाने की परिपाटी चली आ रही है। इसके बीज ठंढाई में प्रयुक्त होते हैं। शीतगुण सम्पन्न और मूत्रल होने के कारण विशेषतः ग्रीष्म ऋतु में इसे लोग ठंढई में मिलाकर उपयोग करते हैं। वैद्यक की औषधियों के योगों में, कई प्रकार के मगजों के साथ अथवा स्वतंत्र रूप से भी इसके बीजों का व्यापक प्रयोग होता है।

●

अमृतफल : बेल

वैशाख का महीना शुरू होते ही ग्रीष्म ऋतु के फलों में बेल को प्रमुखता बढ़ जाती है। इस फल का संस्कृति से सम्बन्ध और जातिगत विशेषता होने के कारण ही इसकी इतनी लोकप्रियता है। आरम्भ में जब यह पकने लगता है, तब एक झोंका ऐसा आता है, जिसमें दान के निमित्त इसका क्रय होने लगता है। जब ब्राह्मण देव के मुख से इस फल को ग्रहण कर प्रभु तृप्त हो चुकते हैं, तब इसके औपचारिक प्रयोग की गति तीव्र हो जाती है। ऐसे तो अन्य फलों की भाँति यह भी खूब खाया जाता है, लेकिन खाद्य के विषय में विशेष सुसंस्कृत व्यक्तियों का समूह इस ऋतु में इसे पेय रूप में रूपान्तरित कर ग्रहण करते रहने का कुछ काल तक नियम बना लेता है।

शर्बत और ठंढाई—अच्छी जाति के कलमी, सुपक्व, मधुर बेल के गूदे को प्रातःकाल मिट्टी की हाँड़ी में रखकर जल डाल दिया जाता है। जब मध्याह्न बेला के पश्चात् दिवाकर की प्रचण्ड किरणों के कारण प्राणी शीतोपचार की कांक्षा करता रहता है, उस समय हाँड़ी से बेल के नीरस भाग को पृथक कर शर्करा के योग से उस जल का पान किया जाता है। तीन-चार घन्टे में हाँड़ी का जल विशेष शीतल हो जाता है और उसमें बेल के गूदे की मधुरिमा, रंग, स्वाद तथा सुगन्ध का पूरा प्रभाव उतर आता है। ऐसा शीतल, मधुर, सुगन्धित एवं तृप्तिकर पेय इस ऋतु में भला कौन अघाने को लालायित न होगा ? यह पेय हल्का होता है। उपर्युक्त जल और गूदे को मिश्रित कर कपड़े से छनी हुई बेल

की ठंढाई लेने की भी प्रथा है, लेकिन यह द्वितीय श्रेणी की समझी जाती है। यह कुछ भारी होता है। जो लोग जलपान के रूप में इसे ही आधार मानकर लेना चाहें, उन्हें द्वितीय श्रेणी की यह ठंढाई लेनी चाहिए।

संक्षिप्त परिचय—उष्ण कटिबन्ध के अन्यान्य वृक्षों की भाँति बेल भी पूर्ण भारतीय वृक्ष है। जब अरब वाले शुरू-शुरू यहाँ आये, तब उन्होंने अपने देश में फलने वाले बड़े-बड़े अनारों से इसकी तुलना की और इसका नाम 'अनार हिन्दी' (हिन्दी का अनार) रख दिया। इस वृक्ष का विस्तृत परिचय देने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि यह विख्यात और सुपरिचित वृक्षों में से एक है। यह वृक्ष इस देश में सर्वत्र प्राप्य है। जहाँ यह समतल भूमि में सर्वत्र मिलता है, वहाँ चार हजार फुट ऊँचे पहाड़ों पर भी पाया जाता है। वसन्त ऋतु के आरम्भ से इसका फल पकना शुरू हो जाता है और ग्रीष्म ऋतु के अन्त तक पकता रहता है।

भारतीय योग-शास्त्र की मान्यता है कि प्राणी जैसा आहार करता है, उसके शरीर में उसी के अनुरूप इष्ट या अनिष्ट गुणधर्म उत्पन्न होते हैं। यही नियम वानस्पतिक प्राणी के लिए भी लागू होता है। बहुत सी दिव्य गुण-युक्त वनस्पतियाँ इसलिए चमत्कृत करने वाले प्रभाव से सम्पन्न होती हैं कि वे पृथ्वी से साधारण आहार, जल, क्षार तथा लवण इत्यादि के अतिरिक्त इस 'रत्नगर्भा' में लीन जवाहरातों के अणुओं को उदरस्थ करती रहती हैं। बहुत-सी ऐसी वनस्पतियां हैं, जिनका स्वाभाविक आहार ही जवाहरात है। हिन्दू-साहित्य में बेल-वृक्ष की इतनी महत्ता अंकित होने का कारण यह है कि अन्यान्य दिव्य वनस्पतियों की भाँति यह भी साधारण आहार के अतिरिक्त एक विशेष धातु के अणुओं को अपने में लीन करता रहता है। इसका वह विशेष भक्ष्य द्रव्य और

कुछ नहीं, जीवित धातु पारद है। पारद के अंश के कारण ही बेल अपने अन्दर तरह-तरह के दिव्य गुणों को तिरोहित किये बैठा है। ६ महीने तक बेलपत्र बासी नहीं होता। इसका कारण भी उसमें व्याप्त पारद ही है। पारद शरीर को पुनः पुनः नया बना देता है। वर्षा होने के बाद बेल वृक्ष में लगे हुए पके फल पुनः हरे हो जाते हैं और उस फल के भीतर का गूदा और डंठल तक भी पुनः हरे हो जाते हैं। क्या यह दशा वृक्ष के अंग-प्रत्यंग में घुले हुए पारद के गुणधर्म को व्यक्त नहीं करती ?

वैद्यक में बेल— वैद्यक प्रणाली से रोगों की चिकित्सा के निमित्त विभिन्न रोगों पर प्रयुक्त होने वाली सिद्ध औषधियों में बेल वृक्ष के अन्यान्य अवयवों का व्यापक उपयोग हुआ है। इस दृष्टि से विचार करने पर यह वैद्यक वानस्पतिक द्रव्यों में अपना मुख्य स्थान रखता है। इसकी छाल, गीले फल, सूखे फल, बीज तथा पत्रों का सिद्ध औषधियों में स्वतन्त्र और मिश्रण के रूप में अधिक व्यवहार किया जाता है। छाल के क्वाथ और पत्रों के स्वरस का जहाँ औषधियों के अनुपान के रूप में प्रयोग हुआ है, वहाँ कच्चे बेल फल के गूदे का अग्नि और मिट्टी के योग से संस्कार कर अथवा सूखे गूदे को काँजी के मिश्रण से पथ्य-रूप में भी प्रयोग किया गया है। औषधियों के पृथक्-पृथक् मिश्रणों में करीब बीसों रोगाधिकारों में यह प्रयुक्त है। इस वृक्ष के मुख्य अवयव (जड़ के निकट की छाल) का वैद्यक के प्रसिद्ध वानस्पतिक मिश्रण 'दशमूल' में उपयोग किया जाता है।

द्रव्य-गुण—वैद्यक निघंटुओं तथा संस्कृत भाषा के अन्यान्य कोश-ग्रन्थों में एक परिपाटी के अनुसार पदार्थों की आकृति, रंग, गुण तथा समाज में उसकी धार्मिक एवं व्यावहारिक उपयोगिताओं

के आधार पर महत्ता सूचक नाम रख दिये जाते थे। वे ही पर्यायवाची नाम होते थे। बेल के विभिन्न पर्यायवाची नामों के लिए भी उपर्युक्त प्रणाली काम में लायी गयी है।

वैद्यक-शास्त्र के द्रव्य-गुण-प्रकरण में बेल वृक्ष के प्रत्येक अवयव का पृथक्-पृथक् गुण-धर्म-विवेचन किया गया है। वैद्यपति नरहरि पण्डित ने अपने राजनिघंटु नाम के द्रव्य-गुण विषयक ग्रन्थ के ग्यारहवें अध्याय में लिखा है—"बेल की जड़ की छाल त्रिदोश-नाशक, मधुर, हल्की और बातनाशक है। इसका कोमल फल स्निग्ध (चिकना), भारी, मल को बाँधने वाला तथा पेट की अग्नि को तीव्र करने वाला है। पका फल भारी, मधुर, कटु, तिक्त, कषाय, उष्ण, संग्राही (मल को बाँधने वाला) तथा त्रिदोष-नाशक है। भाव मिश्र ने अपने 'भावप्रकाश' ग्रन्थ के आम्रादि वर्ग में इसे दुर्जर (देर से पचने वाला) और दोष से युक्त लिखा है। 'वृहत् निघंटु रत्नाकर' ग्रन्थ में बेलपत्र को मुख की रुचि का उत्पादक, वायु, श्लेष्मा, आम (उदरस्थ कच्चा रस) और शूल का नाशक एवं संग्राही लिखा है। इसका फूल अतिसार, तृष्णा और वमन-नाशक है। इसके बीजों का तेल उष्णवीर्य और अत्यन्त वात नाशक है। कच्चे बेल की सूखी गिरी को कांजी में भिगोकर सेवन करने से वह अत्यन्त अग्नि-दीपक, रुचिकारक, हृदय के लिये हितकर एवं आम-वात नामक रोग का नाश करने वाली है।

रोगों पर प्रयोग—इसके विभिन्न अवयव अनेक रोगों पर प्रयुक्त हैं। ज्वर की प्रलाप की अवस्था में बेलपत्र पीसकर सिर पर लेप करना चाहिए। ज्वर तथा श्वास रोग के कारण कलेजे की धड़कन में बेल की जड़ की छाल का काढ़ा पिलाना चाहिये। ज्वर के वेग को कम करने के लिये बेलपत्र का काढ़ा या बेलपत्र का चूर्ण

जल के साथ देना चाहिये। कच्चे बेल का काढ़ा पतले दस्त को रोकता है। पित्त के कारण होनेवाले पतले दस्त में बेल का मुरब्बा देना चाहिये। बच्चों के आँव मिले दस्त में कच्चे बेल को आग में पकाकर उसका गूदा दिन में तीन-चार बार देना चाहिये। बेल का रस पीने से बवासीर के मस्से सूख जाते हैं और बादी का कष्ट मिट जाता है। बेल की जड़ के गुनगुने काढ़े में कुछ देर बैठने से बवासीर के मस्सों का कष्ट मिटता है। मल-द्वार की वेदना में कच्चे बेल और सोंठ के काढ़े में दूध मिलाकर लेना चाहिये। अम्लपित्त के कारण गले की जलन में बेल की जड़ का काढ़ा पीना चाहिये। यह काढ़ा खाँसी और उन्माद रोग में भी लाभदायक है। शरीर की सूजन में बेलपत्र का रस पिलावें। यह रस बेरी-बेरी रोग में भी लाभदायक है। बेलपत्र का रस और मधु सभी प्रकार के प्रमेहों का नाशक है। बेलपत्र के रस के मर्दन से मेदस्वी मनुष्य के शरीर की दुर्गन्ध मिटती है। कामला रोग में बेलपत्र के रस का पान करना चाहिये। बेलपत्र की पुल्टिस बाँधने से घाव की शुद्धि हो जाती है और वह सूख जाता है।

दोषों और शरीर--यन्त्रों पर प्रभाव—मनुष्य-शरीर में पाँच प्रकार की वायु होती है और उनके अलग-अलग कार्य भी नियत हैं। उनमें 'समान' नाम की वायु मनुष्य के आमाशय और पक्वाशय में विचरती रहती है। यह जठराग्नि से मिलकर अन्न के परिपाक-कार्य में सहायता पहुँचाती है। अन्न-जल से उत्पन्न मल मूत्र को यह शरीर से बाहर निकालती है। यदि यह वायु कुपित हो जाय तो मन्दाग्नि, अतिसार, वायुगोला प्रभृति रोग शरीर में घर कर लेते हैं। बेल 'समान' वायु की शान्ती की उत्तम औषधि है। अग्निदीपक, संग्राही, पाचक तथा कफ-वायु नाशक होने के कारण यह पाचक-यन्त्र को निर्दोष बनाये रखता है।

बेल के विभिन्न अवयव शरीरस्थ दोषों को, विशेषतः वायु को शमन करने के अतिरिक्त 'ग्रहणी कला' को दोष-रहित कर देते हैं। वायु, धातु और इन्द्रियों की रक्षा करती है, इसलिए शरीर में इसको विशेष महत्ता है। पहले यज्ञादि में हवन के निमित्त बेल की लकड़ियाँ जलाई जाती थीं और उसी से वायु की शुद्धि हो जाती थी। वैदिक काल में धूम्र-चिकित्सा का विशेष प्रचार था।

हृदय चेतना का स्थान है। यहीं से वृहद्धमनी द्वारा रक्त सम्पूर्ण शरीर में चक्कर लगाता है। बेल शुद्ध होने के कारण हृदय की गति को ठीक रखता है और रक्त शोधक गुण से युक्त होने के कारण रक्त की शुद्धि में योग देता है।

मधुमेह और बेल——इंसुलीन के इन्जेक्शन से मूत्र-शर्करा कम हो जाती है, लेकिन अनुभव और प्रयोग के अनन्तर ज्ञात हुआ है कि इञ्जेक्शन की अपेक्षा बेलपत्र का स्वरस विशेष गुणकारी है। पूने के 'शास्त्री हाल' में लक्ष्मण सखाराम चितले मधुमेह से पीड़ित थे। उनके पैर में एक व्रण उत्पन्न हो गया था। उस समय के सुप्रसिद्ध डाक्टर गोले ने उनकी चिकित्सा की। डाक्टर का अन्तिम निर्णय पैर कटवा देने का था। श्री चितले के घर के लोगों को बेलपत्र के रस का चमत्कार मालूम था। उन्हें बेलपत्र के रस का सेवन कराया जाने लगा। कुछ ही दिनों के बाद व्रण सूखने लगा और मूत्र की शर्करा में भी आश्चर्य-जनक न्यूनता हो गयी।

एक दूसरे सज्जन माधवराव गोडबोले बी० ए० के मूत्र में पाँच-छ प्रतिशत शर्करा पायी गयी। उनके मूत्र की शर्करा भी बेलपत्र के स्वरस से ही कम हुई। तीसरे व्यक्ति एक कोयले के

व्यापारी थे। उस काल के बम्बई के जर्मन डाक्टर ने उन्हें इन्सुलीन का इन्जेक्शन दिया तो सात से घटकर तीन प्रतिशत मूत्र शर्करा रह गयी। इससे कम न हुई। यदि एक दिन भी इन्जेक्शन रोक दिया जाता तो मूत्र-शर्करा पूर्व दशा में आ जाती थी। फिर इन्जेक्शन देते रहने पर भी शर्करा का परिमाण बढ़ने लगा। इन्हें भी बेलपत्र का स्वरस दिया गया एक सप्ताह के प्रयोग से ही शर्करा पाँच से घटकर दो प्रतिशत पर आ गयी।

मात्रा—बेल की मात्रा एक से चार तोले तक की है। यह सूखे बेलसोंठ की मात्रा है जो औषधियों के प्रयोग के लिए है। बेलपत्र के कच्चे रस की भी उपर्युक्त मात्रा है। काढ़े के लिए छाल सूखी हुई दो तोले ग्रहण करना चाहिए।

परिपाक की अवधि—सभी खाद्य-पदार्थों का पाचनकाल निश्चित रहता है। किसी का एक घंटे में, किसी का दो घंटे में और किसी का इससे भी अधिक काल में पाचन होता है। इसी भाँति पके बेल के खाने के दो घण्टे बाद उसका पाचन होता है। यदि बेल विशेष मात्रा में खाने में आ जाय और उसी कारण कष्ट हो तो उपर से खाँड़ का शरबत पीना चाहिए। बेल के दर्प को खाँड़ नष्ट कर देती है।

विटामिन—बेल में 'ए', 'सी' और 'डी' नाम के विटामिन पाये गये हैं। विटामिन 'बी' है या नहीं यह अभी अनिश्चित है। विटामिन 'ए' के अभाव में रोगोत्पादक कीटाणुओं के शरीर पर आक्रमण के समय उससे बचने की क्षमता नहीं रहती। 'सी' विटामिन के अभाव में रक्तविकृति और 'डी' की न्यूनता से अस्थि-विकृति होती है।

रासायनिक घटक—परीक्षण से ज्ञात हुआ है कि बेल की लकड़ी की हीर में भस्म करने पर, फासफेट आफ लाईम और फासफेट आफ आयरन है। उपरोक्त दोनों द्रव्य धातु-क्षीणता के रोगी के लिए लाभदायक होते हैं। यदि बेल फल के खोपड़े या उसकी लकड़ी को जलाकर उस राख को मधु के साथ सेवन किया जाय तो उपरोक्त रोग में लाभदायक पाया गया है।

पाश्चात्य मत—डाक्टर डीमक कहते हैं कि 'बेल फल बल-कारक और रक्त-शोधक है। यह लघु, विरेचक और उदरशोधक है। इसकी छाल या जड़ का क्वाथ नित्य के शीत ज्वर के लिए लाभ-दायक है। नेत्र-पीड़ा के समय बेल की पुल्टिस बाँधने से पीड़ा शान्त होती है। बेल-सोंठ उदर-पीड़ा शामक है। दाह की शान्ति के निमित्त बेल के पके फल के गूदे को इमली के पन्ने के साथ व्यवहार करना चाहिए। हृदय की धड़कन में इसकी छाल का क्वाथ लाभदायक है। श्वास रोग में बेलपत्र का रस देना चाहिए। डाक्टर ग्रीन के मत से पके बेल फल के शरबत के व्यवहार से उदरामय और अजीर्ण रोग शीघ्र शान्त हो जाता है। अतिसार और वमन की शान्ति के लिए कच्चे बेल को अग्नि में पकाकर देना चाहिए। बरफ और मिसरी के साथ पके बेल के शरबत का उपयोग करने से रक्त की शुद्धि होती है।

उदरामय और पाचन यन्त्र-संबंधी अन्य रोगों पर अब डाक्टर भी बेल के मुरब्बे का पथ्य-रूप में रोगियों पर व्यवहार करने लगे हैं। जब अंग्रेज भारत में थे, कलकत्ते की बाथगेट कम्पनी कच्चे बेल के चूर्ण में चीनी का मिश्रण कर, उनकी बन्द शीशियाँ, उनकी कोठियों में दैनिक व्यवहार के लिए पहुँचाया करती थी।

खेती—बेल की खेती के लिए यों तो सभी प्रकार की जमीन उपयुक्त है, इसके लिए दूमट, ऊँची जमीन अधिक उपयुक्त होती

है। इसके वृक्ष के रोपण से पहले बड़े बेल के बीजों को अंकुरदान (नर्सरी) के सहारे खाद-मिली मिट्टी में रोपण करना चाहिये। यह क्रिया वर्षा ऋतु में करनी चाहिये। जब बेल के जखीरे वर्ष-दो-वर्ष के हो जायँ तब बीस-बाईस हाथ की दूरी पर गढ़े खोदने चाहिए। गढ़े दो हाथ चौड़े और दो हाथ लम्बे हों। सड़े गोबर और गौशाला के सड़े कतवार से तैयार हुई खाद को गढ़े से निकलती हुई मिट्टी में मिलाकर गढ़े में डाल देना चाहिये। फिर उस गढ़े में अंकुरदान से बेल के पेड़ को लेकर रोपण करना चाहिये। अंकुरदान की थोड़ी मिट्टी बेल के पेड़ की जड़ के चारों ओर अवश्य हो। बड़े पेड़ की जड़ से निकली कोंपलों को भी अंकुरदान में पालकर रोपण किया जाता है। पेड़ की जड़ से तैयार कोंपल वाले पौधे शीघ्र फल देने लगते हैं। उनके फल भी उत्तम होते हैं। जिस भाँति बीजों को वर्षा ऋतु में उगाते हैं, पेड़ की जड़ में फूटी-कोंपलों को भी वर्षा ऋतु में लेकर अंकुरदान में पाल लेना चाहिये। नये पौधे की सेवा सावधानी से होनी चाहिये। यह सपुष्प और द्विदलीय जाति का वृक्ष है। इसके बीज आवृत होते हैं। उष्ण प्रदेश के वृक्षों की श्रेणियों में से बेल भी है।

बेलपत्र श्री शंकर के पूजन की एक मुख्य सामग्री है। प्राचीन ऋषि-गण योगाभ्यास और समाधि लगाये बिना अन्न-जल के, जिस वनस्पति के सहारे ध्यान-मग्न रहते थे उसी में से एक 'बेल-पत्र भी है। बेलपत्र के सेवन से मल-मूत्र कम निकलता है, शरीर और चंचल चित्त की वृत्तियां एकाग्र होती हैं तथा गूढ़ तत्त्व के विचार की शक्ति जाग्रत होती है। यज्ञ के शाकल्य में इसके पत्र काम में लाये जाते हैं। अग्निहोत्री बेलपत्र और दूध के संयोग से श्वेत वर्ण का भस्य तैयार करते हैं। इसके फूलों से मधुर गन्ध का इत्र बनता है। कच्चे फल से मुरब्बे, सिरके का सादा अचार और

बेलसोंठ बनाया जाता है। इसके पके फल की लोकप्रियता तो प्रसिद्ध ही है। अपने ऋतु में यह खूब खाया जाता है। पके फल के शरबत का काफी व्यवहार होता है।

सूतिकागृह में बाल-ग्रह की शान्ति के निमित्त बेल वृक्ष के कांटे को धूनी दी जाती है। इसको छाल से पीला रंग तैयार किया जाता है। मलयागिरि चंदन के अभाव में बेल की लकड़ी घिसकर व्यवहार की जाती है। इसकी लकड़ी चिमड़ी और मजबूत होती है, इस कारण उसका उपयोग महल, खेती के औजार, ईख तथा तेल निकालने के कोल्हू एवं मूसल बनाने में होता है। मकान में अधिक मजबूती और चमक लाने के लिए सुर्खी-चूने में बेल की लकड़ी के चूर्ण का मिश्रण किया जाता है। हवन की लकड़ियों में बेल की लकड़ी ली जाती है; क्योंकि यह यज्ञीय वृक्षों की श्रेणी में है। इसके बीजों का तेल बाल काला करने के काम में लाया जाता है। इसके पके फल के खोपड़े को साफ कर कटोरी के तुल्य बना लिया जाता है और उसमें एक सप्ताह तक पड़ा रहने दिया जाता है। उस तेल को सिर में लगाने से जूं समाप्त हो जाती हैं। पके बेल फल के छिलके की धूनी देने से मच्छर भाग जाते हैं। बेल वृक्ष में लक्ष्मी का वास है; अतः गृह्यसूत्र (कर्मकाण्ड) एवं तांत्रिक प्रयोगों में इसका व्यवहार प्राचीनकाल से चला आ रहा है। यक्षिणियों के साधन के निमित्त बेल वृक्ष के नीचे बैठकर ही अनुष्ठान प्रारम्भ किया जाता है। पुराणों में तो बेल की महत्ता और प्रयोगों से उनके पृष्ठ भरे पड़े हैं। ग्रीष्म ऋतु में जब दिन बड़ा होता है, लगातार फलाहार करने वाले यदि इसके फल का दस-ग्यारह बजे सेवन कर लें तो उन्हें दिन भर भूख न लगे और न किसी प्रकार की दुर्बलता का ही अनुभव हो।

परम पथ्य शाक : करेला

परिचय--करेला प्रसिद्ध शाक है। यों तो यह बारहों मास फलता रहता है, लेकिन वैशाख, ज्येष्ठ और अषाढ़ इन तीन महीनों में अधिक फलता है। अधिक वर्षा होने पर इसकी बेल गलने लगती है, पुष्प झड़ जाते हैं और फसल समाप्त हो जाती है। शीतकाल में इसकी बेल बढकर फूलने-फलने लगती है। यद्यपि ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा शीत ऋतु में इसमें फल कम होते हैं तथापि स्वाद की दृष्टि से, शीत ऋतु का ही करेला उत्तम समझा जाता है। जिस खेत की मिट्टी में बालू मिली होती है, वहाँ इसकी उपज विशेष होती है।

करेले की साधारणतः दो जातियाँ होती हैं— बड़ा करेला और छोटी करेली। बीज, जमीन और जलवायु के भेद से करेले और करेली के रंग, रूप, आकार और तौल में भी भिन्नता आ जाती है। कोई करेला अधिक सफेद, कोई बहुत ज्यादा हरा और कोई हलका हरा होता है। किसी के ऊपर का हिस्सा अधिक खुरदरा, किसी का कम और किसी में केवल नाम मात्र ही खुरदरा चिन्ह होते हैं। लम्बाई में बड़े करेले तीन इंच से लेकर एक-एक हाथ तक देखने में आते हैं। बड़े करेले में एक और जाति होती है, जो वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में पाई जाती है। इसकी तौल तो कभी-कभी एक-एक पाव तक की हो जाती है। यह बहुत ही कोमल, पर अति तिक्त होता है। करेली भी रंग में करेले की भाँति अधिक सफेद, अधिक हरी और हलकी हरी होती है। यह साधारणतः एक से तीन इंच तक की होती है और करेले की अपेक्षा तिक्त होती है। करेले को यदि बेल में ही छोड़ दिया जाय, तो वे पककर

पीले हो जाते और पके करेले आप ही फट जाते हैं। पके हुए लाल या पीले करेले कुछ तिक्त और विशेष मधुर होते हैं।

गुण-दोष—आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार करेला शीतल, मलभेदक, हलका, तिक्त, ज्वर, पित्त, कफ और रक्त-विकार-नाशक तथा पाण्डु, प्रमेह और कृमि को हरने वाला है। करेली में भी उपर्युक्त गुण हैं, लेकिन वह अग्निका विशेष उद्दीपन करने वाली और हलकी है। कई आचार्य करेले को रुचिकर, स्वादु एवं उष्ण मानते हैं।

नवीन मत—प्राकृतिक चिकित्सक इसे खून को शुद्ध करने वाला, यकृत् और प्लीहा रोग में लाभदायक, बहुमूत्र, पीलिया और कब्ज को दूर करने वाला, पेट के कीड़ों का नाशक, पौष्टिक, तासीर में गरम, बहुत दिनों तक लगातार सेवन करते रहने से बुखार, चेचक एवं खसरे से बचाने वाला मानते हैं।

रासायनिक तत्त्व—आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसंधानानुसार करेला अपने वर्ग के फल-शाकों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमें शाकतत्त्व अधिक मात्रा में विद्यमान हैं। विटामिन की दृष्टि से भी यह उत्तम समझा जाता है। इसमें विटामिन 'ए,' अधिक और विटामिन 'सी' कम अंश में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें लोह और फास्फोरस भी पाये जाते हैं। बड़े करेले की अपेक्षा छोटी करेली में लोह का अंश अधिक पाया जाता है। यकृत और रक्त के लिए जिस प्रकार लोह आवश्यक है, उसी प्रकार हड्डी, दाँत, मस्तिष्क तथा अन्य शारीरिक अवयवों के लिए फास्फोरस भी बहुत ही आवश्यक तत्त्व समझा जाता है।

अनेक रोगों में पथ्य—आयुर्वेद के रोग-आहार विधान की दृष्टि से यदि करेले को परम पथ्य शाक कहा जाय तो अत्युक्ति

न होगी; क्योंकि रोगों की संख्या पर ध्यान देने से यही ज्ञात होता है कि जितने रोगों पर करेला पथ्य-रूप में वर्णित है, दूसरे शाक को शायद ही यह स्थान प्राप्त हो। रोगों पर करेला पथ्य-रूप में व्यवहार किया जाता है। मध्य ज्वर, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, वात-रोग, वात-रक्त, उरुस्तम्भ, आमवात, शूल, प्रमेह, उदर-शोथ, गलगण्ड, श्लीपद, विद्रधि व्रण, व्रण-शोथ, सद्योव्रण, नाड़ीव्रण, उपदंश, शूल रोग, शीतपित्त, अम्लपित्त, विसर्प, विस्फोट, मसूरिका, मुख रोग, कर्ण-रोग, नेत्र-रोग, शिर-रोग, पित्त-रोग तथा श्लैष्मिक रोग—इनमें दोष, अवस्था आदि का विचार करते हुए करेले का शाक पथ्य-रूप में दिया जाता है।

रोगों पर प्रयोग

१. अम्लपित्त रोग के कारण भोजन करते ही तुरन्त वमन हो जाता हो, तो करेले के फूल या पत्तों को घी में भूनकर खाना चाहिए। स्वाद के लिए सेंधानमक मिलाया जा सकता है।

२. आग से जले हुए घाव पर, जिसमें पानी निकलता हो, करेले के फल को पीसकर, उसके रस का लेप करना चाहिए।

३, नित्य होने वाले शीत ज्वर की शान्ति के लिए, रविवार के दिन डोरे में करेली की जड़ बाँधकर, उसे कमर में बाँधना चाहिए।

४. खुजली और महीन फुन्सियों पर करेले की जड़ का उबटन लगाना चाहिए।

५. आँख के फूले, जाले और रतौंधी आदि की शान्ति के लिए, जंग लगे हुये लोहे के बरतन पर, करेले के पत्तों का रस और एक कालीमिर्च का थोड़ा सा हिस्सा घिसकर आँजना चाहिये।

६. बच्चों के अधिक कै करने पर, करेले के तीन बीज और तीन कालीमिर्च को जल के साथ पत्थर पर घिसकर देने से तुरन्त लाभ होता है।

७ पशुओं की जीभ में यदि काँटे निकल आवें तो दिन में कई बार करेले के पत्तों को पीसकर जीभ पर लेप करना चाहिए।

करेले की मिठाई—करेला १ सेर, चीनी २ सेर, जल १ सेर, घी १ छटाँक, खोआ १ पाव, चीनी का कन्द २ छटाँक, कालीमिर्च ८ आने भर, बड़ी इलायची के दाने १ तोला, केसर २ आने भर, गुलाबजल १ तोला, चिरौंजी १॥ तोले, बादाम की गरी १॥ तोले और किशमिश २॥ तोले।

बनाने की विधि—मझोले कद के करेलों को हलके हाथों से ऊपर से खुरच ले और डेढ़ सेर पानी में ४ आने भर फिटकरी डालकर उनको उबालें। उबल जाने पर, बीजों को निकालकर फेंक दें और करेलों को निचोड़कर रख लें। इसके बाद खोए को भूनें। जब खोआ भुन जाय तब उतारकर ठंढ़ा कर लें। फिर उसमें चीनी का कन्द, कालीमिर्च, केसर, इलायचीदानों का चूर्ण, चिरौंजी, बादाम की छिली और महीन कतरी हुई गिरी तथा किशमिश डालकर सभी को भलीभाँति मिला लें। इसी में से थोड़ा-थोड़ा सभी करेलों में भर लें और करेलों को तागे से लपेट लें। फिर एक पाव पानी में दो सेर चीनी की चाशनी तैयार करें। जब एक तार की चाशनी बन जाय, उसमें करेलों को डालकर मन्द-मद आँच पर पकने दें। जब चाशनी सूखकर सफेद होने लगे, उसमें गुलाबजल डालकर नीचे उतार लें। यदि चतुर पाक बनाने वालों के हाथ से करेले की मिठाई बनवाई जाय, तो बहुत ही स्वादिष्ट बनती है।

इसके अतिरिक्त, करेले से नमकीन, भरवाँ तथा भुजिया आदि बनाई जाती हैं। ये दोनों चीजें प्रायः सभी घरों में प्रचलित-सी हैं।

बथुए की बिदाई

वर्ष की समाप्ति पर तुम भी अपने प्रेमियों को त्यागकर चल देते हो। कार्तिक से चैत्र तक छ मास पर्यन्त तुम्हारा लुभावन साहचर्य रहता है। इतने समय में तुम कितने लोकप्रिय हो जाते हो, क्या इसका तुम्हें कुछ अनुभव है ? यदि नहीं तो सुनो।

तुम्हारे निःस्वार्थ उपकार और आत्मदान से प्रभावित होकर आर्यों के पूर्वज वनस्पति-शास्त्री ऋषियों ने अनेकानेक उपाधियों से तुम्हें विभूषित किया था। तुम्हारी गुण-गरिमा का द्योतक नामकरण सचमुच तुम्हारे ही अनुरूप है। 'शाकवीर', 'शाकराज', 'शाकश्रेष्ठ', 'राजशाक', 'शाकराट' और 'चक्रवर्ती' आदि उपर्युक्त नाम तुम्हारी प्रशति के लिए हुए, अब तुम्हारी लघु-काया में निहित गुणावली का स्मरण कर तुम्हारे परिचयपरक भी कितने ही नामकरण वनस्पति-विदों ने किये हैं। क्षार पत्र (क्षार से भरा पत्र), पांशु पत्र (रज से भरा पत्र), यवशाक (जौ के साथ उत्पन्न होने वाला) आदि उपरोक्त कथन को पुष्ट करते हैं।

अत्रिमुनि ने अपनी संहिता में निर्देश किया है कि हृदय के रोग से ग्रसित, वायु विकार से त्रसित और पित्त विकार से व्याकुल एवं अर्श रोग से दुखित प्राणी यदि तुम्हारा सेवन करे तो निश्चय ही रोग-मुक्त हो सकते हैं। क्षारीय होते हुए भी तुम में माधुर्य गुण है, इसे भी उन्होंने व्यक्त किया है। अत्रि मुनि को अपने यज्ञ और तपश्चर्या में अधिक कालतक उलझे रहना पड़ता था, अतः उन्होंने आदेश दिया। लेकिन भारत के उस काल के प्रसिद्ध शल्य-कोविद (सर्जन) सुश्रुताचार्य उतने काल तक जप-तप में समय

बिताने वाले नहीं थे। वे पूरे सांसारिक और लोक-व्यवहार कुशल थे। प्राणियों के जीवनदान को ही उन्होंने अपना पवित्र लक्ष्य माना था। अपनी संहिता में उन्होंने तुम्हारे लिए विशेष उल्लेख किया है। उनका कहना है कि यदि तुम्हारा सेवन किया जाय तो उदर की कृमि नष्ट हो जाती है, मेधा शक्ति की वृद्धि होती है, जठराग्नि तीव्र हो जाती है और प्राणी का बल बढ़ जाता है। रुचि को उत्पन्न करना तथा सूखे मल को ढीला करना तुम्हारा गुण बतलाते हैं। हाँ! सुश्रुताचार्य ने मार्के की वैज्ञानिक बात कही है जिसका अनुभव प्राकृतिक चिकित्सक भी बतलाते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान का आरोग्य सूत्र है—'अम्ल परिणाम कारक आहार से बचो और क्षारीय प्रभाव वाले पदार्थों का सेवन करो।' यही बात हजारों वर्ष पूर्व हिन्दू वैद्यक के महारथियों ने घोषित किया था। उन्हीं में सुश्रुताचार्य भी थे उनका कहना है कि—'सक्षारः सर्व दोषघ्न : वास्तुको·····। क्षार से युक्त होने के कारण बथुआ सभी दोषों (कफ, पित्त और वायु) का नाशक है। उन्होंने तुम्हारे पचने के पश्चात् 'कटु विपाक' (पचने के बाद डकार में अनुभव होने वाला कड़ुआ स्वाद) वाला गुणधर्म बतलाया है।

इतना ही नहीं अपने गुणग्राहकों से और भी तुम अपनी गुण-गाथा सुनते जाओ। बारहवीं शताब्दी में चक्रपाणि दत्त नामक वैद्यविद्या के परम प्रवीण आचार्य हो गये हैं। उस काल में वे पाकशास्त्र में पारंगत समझे जाते थे। वे स्वयं विभिन्न प्रकार और स्वाद के व्यंजन निर्माण कर खाते और खिलाते थे। इसी गुण पर मुग्ध होकर गौड़ देश के महाराज ने अपने राजदरबार में उन्हें पाकशाला-अध्यक्ष (बादशाह अकबर के राजत्व काल में जिस स्थान पर प्रधान आस्वादक रहते थे और जिन्हें मीर बकावल के नाम से पुकारा जाता था) के पद पर नियुक्त किया था। वे अपने

द्रव्य गुण ग्रन्थ में तुम्हारे लिए सभी गुण सुश्रुताचार्य वाला बतलाते हैं; लेकिन पचने पर 'लघु' इतना वे विशेष अपने अनुभव से लिखते हैं। एक बात चक्रपाणि दत्त ने और कही है जो पाक-विज्ञान से सम्बन्धित है। यद्यपि वे सभी प्रकार के हरे पत्ते वाले सागों के लिए कहते हैं तथापि तुम्हारे लिए विशेष लागू होता है। अधिक क्षारयुक्त होने के अतिरिक्त तुम 'शाकराज' हो। उनका कहना है शाक बनाते समय इसे एक बार उबालकर रस निचोड़ दें फिर उसे घी में भूने (स्विन्नं घृत भर्जितं शाकम्)।

अठारहवीं शताब्दी के राजबल्लभाचार्य ने अपने राजनिघंटु में तुम्हारे विशेष गुण का वर्णन करते हुए लिखा है—यह शीतल है, कुछ अम्ल है, ज्वर नाशक है और मल-मूत्र को शुद्ध करने वाला है।

मानव-शरीर–शास्त्रियों ने तुम्हारे प्रभाव के विषय में बहुत कालतक छानबीन की है। उनका कहना है कि बथुआ को खाद्य रूप में कुछ कालतक लेने के पश्चात् हृदय के साधारण विकार शान्त होने लगते हैं। दिल का भारी मालूम होना, वायु के कारण हृदय का शूल, दिल का बैठना-सा अनुभव होना, छोटी-मोटी दिल से सम्बन्ध रखने वाली व्याधियाँ बथुआ के एकाध सप्ताह के सेवन से ही मिट जाती हैं। यकृत् के साधारण विकार को भी यह एक पक्ष तक सेवन कर लेने के पश्चात् दूर कर देता है। पाचक ग्रन्थियाँ तो इसके खाते ही इसके क्षारीय प्रभाव के कारण अम्ल स्वभाव को त्यागने लगती हैं और आहार से बनने वाले रस में विकृत पित्त के प्रवेश को रोकती है। दोनों वृक्कों (गुर्दों) की कार्यशीलता को यह नियमित करता है, अतएव मूत्रोत्सर्ग काल की बाधाएँ-रुक-रुक कर मूत्र का निकलना और थोड़ा निकलना, दाह होना, मूत्र का रंग अधिक जर्द रहना आदि सप्ताहान्त तक बथुआ के सेवन करते

रहने पर मिट जाती हैं। इसे साग रूप में अथवा जूस की विधि से ग्रहण करते रहने से मस्तिष्क की उष्णता, चंचलता, गुरुता और उसके साधारण दोष मिट जाते हैं। वात सस्थान की विकृतियों पर बथुआ का शुभ परिणाम यों प्रत्यक्ष हो उठते हैं कि जिन व्यक्तियों का स्नायुमंडल सदोष होता है उनके शरीर में भी अम्लता की वृद्धि होती रहती है और बथुवा अपने आत्यधिक क्षारीय गुण धर्म के कारण शरीर के विभिन्न अवयवों में व्याप्त अम्लता को नष्ट करने लगता है। अम्लता न्यून होते ही वातसंस्थान या स्नायु मंडल के रोग से ग्रसित रोगी चंगे होने लगते हैं। ऐ शाकश्रेष्ठ तुम्हारे इन्हीं गुणों के कारण शरीर विज्ञानाचार्यों ने तुम्हारी प्रशस्थियों में बहुत-सी ज्ञातव्य बातें लिखी हैं। जिस काल में तुम सर्व-साधारण के लिए अति सुलभ रहते हो पुराने कोष्ठवद्ध के रोगी तुम्हारे अनन्य भक्त बने रहते हैं। क्योंकि तुम में मल निःसारक गुण विद्यमान है।

हिन्दू वैद्यक प्रणाली से चिकित्सा करने वाले अनुभवी प्राचीन चिकित्सकों ने तुम्हारी रोगनिवारण की क्षमता को प्रत्यक्ष देखा और अनुभव किया था तभी तो उन पीयूषपाणि वैद्यराटों की घोषणा है कि—'पत्रशाकों में मूर्द्धन्य स्थान रखने वाले वास्तूक (बथुवा) हृदय रोग को मिटाता है, पित्त-विकार को शान्त करता है, अरुचि को समाप्त करता है, क्षतक्षय का निवारण कर डालता है, दौर्बल्य, रक्त-पित्त, धातुक्षीणता, कोष्ठगत वायु और श्लेश्म को समूल नष्ट करने वाला है। ज्वर, अतिसार क्षुधा, तृष्णा, श्वास, कास, मद, मूर्च्छा, वायु तथा मद्य पीने के कारण उत्पन्न व्याधियों में इसे औषध के मिश्रण के रुप से पथ्य रुप से अथवा औषध के अनुपान के साथ लेते रहने पर उपर्युक्त रोग जड़ से मिट जाते हैं। उपरोक्त तुम्हारे गुण-धर्म, तुम्हारी गरिमा और द्रव्य

श्रेष्ठता का ही परिचायक है। जिन्हें प्राचीन चिकित्सकों ने उद्घोषित किया था।

आयुर्वेद विधि से उपचार करने वाले उपचारक वैद्य गुण-सम्पन्न होते थे। उनके उपचार प्रणाली, द्रव्यगुण शास्त्र एवं त्रिधातुवाद (त्रिदोष-विज्ञान) पर आधृत होती थी। उन परम श्रेष्ठ उपचारविदों का कथन है कि—यदि इस शाकवीर कहलाने वाले बथुआ का पथ्य रूप में, स्वतन्त्र अथवा अन्य पथ्य द्रव्यों के साथ ग्रहण किया जाय तो अर्श, अग्निमान्द्य, उदर-कृमि, कास, उन्माद, अपस्मार, वातरक्त, उरुस्तंभ, आमवात, लसीका, प्रमेह तथा अम्ल-पित्त इत्यादि रोग निर्मूल हो जायेंगे।

पर्यटकों का कथन है कि— मृदु आकृति और लुभावने स्वरूप वाले पवित्र शाक बथुआ की कई जातियाँ होती हैं। रबी फसल के साथ उत्पन्न होनेवाली जाति तो प्रसिद्ध है। एक बड़े पत्ते वाली जाति का भी बथुआ होता है। इसका पौधा तीन-चार हाथ तक ऊपर की ओर बढ़ता है। पौधे की धड़ की मोटाई एक-डेढ़ इंच तक डंठल, आधे इंच की चौड़ाई तक मोटी और पत्ते कटे हुए गोल तथा चौड़ाई-लम्बाई में डेढ़-दो इंच तक के होते हैं। इसके जीवन की अवधि भी खेत वाले बथुआ की भाँति छ मास की होती है। छ मास के बाद सींचते रहने पर भी पौधे कुम्हला जाते हैं। तीसरी जाति बथुआ की वह होती है जिसे ग्रामीण क्षेत्र के लोग पुष्प की भाँति अपने घर और उसके आसपास क्यारियों में लगाते हैं। पुष्प की क्यारियों में पनपने वाले पौधे जिस भाँति विकसित होते हैं इस जाति के बथुआ का भी उसी प्रकार का जीवन होता है। इसके पौधे देखने में किंचित जटाधारी पुष्प की तरह, लेकिन रंग और मोटाई में उससे सर्वथा भिन्न होता है। अंगुली की भाँति मोटाई लिए अधिक से अधिक अढ़ाई-तीन हाथ तक की उँचाई तक जाते

हैं। इसके पत्ते खेत वाले बथुए से किंचित बड़े, लम्बे और लाल रंग के होते हैं। खेत वाले बथुए की भाँति ही इसके पत्ते भी कणयुक्त होते हैं। सप्ताह में एक-दो वार इसके पत्ते तोड़कर बोने वाले साग बनाते हैं। इस प्रकार साल भर तक या उससे भी अधिक कालतक इस पौधे से साग के काम आने वाले पत्ते मिलते रहते हैं। भौगोलिक पर्यटकों का कथन है कि—सरस भूमि वाले क्षेत्रों में ही यह सागों का राजा क्यारियों की शोभा बढ़ाता है। एक ही जाति के बथुए से सर्वसाधारण परिचित थे, लेकिन तुम्हारे उपासक इन भौगोलिक पर्यटकों ने तुम्हारे दो और जाति का पता पा ही लिया। भारत के प्राचीन पाक-शास्त्र के पंडितों ने तो तुम्हारे मृदु पत्रों द्वारा अनेकानेक प्रकार के खाद्य पदार्थ प्रस्तुत कर रसना स्वाद के धनी व्यक्तियों को तृप्त किया है। पकौड़ियाँ, परावठे, रायता तथा अन्य शाग-शब्जियों में मिश्रण के साथ, सम्यक स्वाद का अनुभव भारतीयों में न मालूम कब से होता आ रहा है। दाल के साथ मिश्रण करने की परिपाटी भारत के अनेक प्रदेशों में बहुत काल से प्रचलित है। इस प्रकार हे शाकराज दीपोत्सव या अन्नकूट पर्व के समय अन्नपूर्णा की स्वर्णथाल में सजाकर रखे जाने वाले छप्पन प्रकार के भोग के साथ तुम्हारा प्रथम दर्शन होता है। उस काल तुम्हारे भक्त कृतकृत्य हो उठते हैं। छ मास की छोटी अवधि तक तुम्हारे साहचर्य का सुख भोगकर जब तुम्हारे भक्त या प्रेमी तृप्त हो जाते हैं तब तुम्हारी बिदाई की बेला आ पहुँचती है। तुम्हारी बिदाई सप्ताह-दो सप्ताह खलती अवश्य है; पर इस आशा के कारण फिर वह विछोह का कष्ट कम हो जाता है; कि फिर छ मास बाद तुम्हारे कोमल रेणुभरित पत्र का दर्शन अवश्य होगा।

पारिवारिक चिकित्सा एवं स्वास्थ्योपयोगी हमारी उत्कृष्ट पुस्तकें

१. रसायनसार	८.००
२. अनुपान विधि	.५०
३. अनुभूतयोग (पांच भाग)	५.२५
४. सिद्ध मृत्युञ्जय योग	१.००
५. प्रयोग रत्नावली	२.००
६. भोजन विधि (पथ्यापथ्य)	२.००
७. प्रारम्भिक स्वास्थ्य	.४०
८. आहार सूत्रावली	.५०
९. ग्राम्य चिकित्सा	.७५
१०. टोटकाविज्ञान(प्रथम भाग)	.४०
११. टोटका विज्ञान (द्वितीय भाग)	.६०
१२. देहातियों की तन्दुरुस्ती	.७५
१३. मोटापा कम करने के उपाय	१.००
१४. आरोग्य लेखाञ्जलि	१.२५
१५. व्यायाम और शारीरिक विकास	३.००
१६, स्वास्थ्य और सद्वृत्त	२.००
१७. नीम के उपयोग	१.२५
१८. मधु के उपयोग	१.२५
१९. मट्ठा या छाछ के उपयोग	१.२५
२०. तुलसी के उपयोग	.७५
२१. हल्दी के उपयोग	.३५
२२. लहसुन के उपयोग	.३५
२३. अजवाइन के उपयोग	.३५
२४. सौंफ के उपयोग	.३५
२५. अदरख के उपयोग	.३५
२६. तेजपात के उपयोग	.३५
२७. मेथी के उपयोग	.३५
२८. हींग के उपयोग	.३५
२९. जीरा के उपयोग	.३५
३०. धनिया के उपयोग	.३५
३१. राई के उपयोग	.३५
३२. मगरैला के उपयोग	.३५
३३. प्याज के उपयोग	.३५
३४. आँवला के उपयोग	.३५
३५. नीबू के उपयोग	.३५
३६. गूलर के उपयोग	.३५
३७. मसालों के उपयोग (१६पु० सजि०	५.५०
३८. मौसमी सात बीमारियाँ	.३५
३९. ऋतुएँ और स्वास्थ्य	.६०
४०. स्वच्छता और स्वास्थ्य	.३०
४१. व्यायाम और स्वास्थ्य	.३०
४२. भोजन और स्वास्थ्य	.३०
४३ मनोवेग और स्वास्थ्य	.३०
४४. मादक वस्तुएँ और स्वास्थ्य	.३०
४५. आचार विचार और स्वास्थ्य	.३०
४६. स्वास्थ्य साधन (६ पु० सजि०)	२.००
४७. आम के उपयोग	१.५०
४८. प्रसूता और शिशु-परिचर्या	.६०

आगामी प्रकाशन

१. आरोग्य लोकोक्तियाँ
२. घरेलू नुस्खे
३. रसायनसार परिशिष्ट
४. प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान

श्यामसुन्दर रसायनशाला प्रकाशन, गायघाट, वाराणसी

पारिवारिक चिकित्सा के लिये श्रेष्ठ पुस्तकें

मसालों के उपयोग

- हल्दी
- लहसुन
- अजवाइन
- सौंफ
- अदरख
- तेजपात
- मेथी
- हींग

- जीरा
- धनिया
- राई
- मगरैला
- प्याज
- नीबू
- आंवला
- गूलर

इन पुस्तकों से अनेक प्रकार के कठिन रोग दूर करने के लिए सरल उपायों की विशेष जानकारी होगी।

—०—

प्रत्येक का मूल्य : पैंतीस - पैंतीस पैसे
१६ पुस्तकें एक जिल्द में पांच रुपये पचास पैसे में।

विशेष जानकारी के लिए पुस्तकों का बड़ा सूचीपत्र मंगाइये।

श्यामसुन्दर रसायनशाला प्रकाशन, गायघाट, वाराणसी-१